प्रकाशक—

बाबू केदारनाथ गुप्त एम० ए०

प्रोप्राइटर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला,

दारागंज, प्रयाग।

जयपुर के सोल एजेन्ट

प्रभात प्रकाशन, जयपुर

जोधपुर के सोल एजेन्ट

भारतीय पुस्तक भवन, जोधपुर

मुद्रक

सरयू प्रसाद पांडेय 'विशारद'

नागरी प्रेस, दारागंज,

प्रयाग।

PREFACE

It is a pleasure to introduce a book like this to the Public in general and to students in particular. It is at once a book on ethics, religion, philosophy, sociology and what not. In fact, it is a universal hand-book wherein one will find a sure and easy way to success in life and thereafter—no conflict of ideals, on dissensions of principles.

The book of which this is a translation is entitled *'the economy of human life,'* and has been very appropriately translated by the writer into 'मनुष्य जीवन की उपयोगिता'। We are so much careful about our material advacement and waste ourselves in studying the problems of economics either to gain a parchment or to increase the wealth of our nation or country. Both these ideals are far below the Hindu ideal of a peaceful or happy life. We find many a learned head who have failed in life for want of certain knowledge of things indispensable for success in life. The book collects such necessaries and presents them to-day to our students, for them to *read, mark, learn* and *digest*.

Wouldst thou learn to die nobly? Let thy vices die before thee.

DARAGANJ HIGH SCHOOL,
Allahabad.
10th April, 1919.

HARI RAM JHA

भूमिका

(प्रथम संस्करण से)

जिस पुस्तक को १८ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के पाश्चात्य देशों में इतनी सर्वप्रियता मिले व जिस पुस्तक के उपदेशामृत पान करने से फ्रेंच, जर्मन, इटैलियन और अङ्गरेजों के मन इतने शुद्ध और पवित्र बन जायँ उस पुस्तक का हिन्दी में नाम तक न सुनाई पड़े, यह कितने शोक और आश्चर्य की बात है। पहले पहले यह पुस्तक एक चीनी विद्वान् की दृष्टि में पड़ी। उसने उसका अनुवाद चीनी भाषा में किया। तदनंतर तत्कालीन चीन देश निवासी एक अङ्गरेज विद्वान् ने उसे देखा और उसने उसका अनुवाद अङ्गरेजी भाषा में किया। फिर उसी के द्वारा यह पुस्तक प्रथम-प्रथम सन् १७५१ ई० में इङ्गलैंड देश में प्रसिद्ध हुई।

हम भी अनुवाद करके कदाचित् हिन्दी संसार में इस अभाव की पूर्ति न कर सकते, यदि हमारी पाठशाला के सुयोग्य हेड मास्टर हरीराम जी झा अङ्गरेजी पुस्तक देकर उसके अनुवाद करने का प्रोत्साहन हमें न देते। वस्तुतः प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशित होने का अधिकांश श्रेय उन्हीं को मिलना चाहिये।

मूल ग्रंथ किस भाषा में लिखा गया, किस समय लिखा गया, कहाँ लिखा गया और किसने लिखा, इसका कोई संतोषप्रद प्रमाण नहीं है। लार्ड चेस्टर फील्ड के प्रति अङ्गरेजी भाषान्तरकर्ता का पत्र ज्यों का त्यों अनुवाद करके हम पाठकों के सामने रक्खे देते हैं। वे इन बातों का निर्णय स्वयं कर लें।

श्री १०८ चेस्टर फील्ड के अर्ल महोदय की सेवा में

पेकिन १२ मई १७४९

परम पूज्य महोदय !

२३ दिसम्बर सन् १७४८ के दिन जो पत्र मैंने आपकी सेवा में भेजा था उसमें जो कुछ मुझे इस विस्तृत राज्य के विशेष स्थान वर्णन

और प्राकृतिक इतिहास के सम्बन्ध में लिखता था वह लिख चुका हूँ। इसके आगे कुछ पत्रों में मेरा विचार था कि मैं आपको यहाँ के कायदे, कानून, राज्य-व्यवस्था, धर्म और लोगों के रहन-सहन, रीति-रिवाज के विषय में लिखता, किन्तु हाल में एक ऐसी घटना घटित हो गई है कि मुझे विवश होकर अपने विचार स्थगित कर देने पड़े। यहाँ के विद्वानों का ध्यान आजकल उसी घटना की ओर आकृष्ट हो रहा है और संभव है आगे चल कर योरोपीय विद्वानों का भी ध्यान उसी ओर आकृष्ट हो जाय। इस घटना के वृत्तांत से आप सरीखे महानुभावों का कुछ न कुछ मनोरञ्जन अवश्य होगा; यह समझ कर तत्सम्बन्धी अद्यावधि उपलब्ध बातों को स्पष्ट लिखकर आपके सामने रखता हूँ!

चीन से लगा हुआ पश्चिम की ओर तिब्बत नाम का विस्तृत देश है। कुछ लोग "बरान टोला" भी कहते हैं। इस देश के लासा नामक प्रान्त में मूर्ति पूजकों का गुरू दलाई लामा रहता है। समीपवर्ती देश के निवासी भी देवता समझकर उसकी पूजा करते हैं। धार्मिक वृत्ति के लिए अधिक प्रख्यात होने के कारण लाखों धार्मिक मनुष्य उसका आशीर्वाद लेने के लिए लासा जाकर उसका दर्शन करते हैं और भेंट चढ़ाते हैं। उसका भव्य निवास मन्दिर पाऊताला पहाड़ पर बना हुआ है। इस पहाड़ के इर्द गिर्द और लासा प्रान्त भर में भिन्न-भिन्न दरजे के इतने लामे रहते हैं कि यदि उनकी संख्या कही जाय तो लोग विश्वास न करें इनमें से बहुतों ने अपने रहने के लिए बड़े-बड़े सुन्दर मंदिर बना रक्खे हैं इनका भी मान सर्वसाधारण दलाई लामा से उतर कर करते हैं। इटली की तरह देश भर में धर्मोपदेशक ही धर्मोपदेशक देख पड़ते हैं तातारी, मोगल साम्राज्य और अन्य पूर्वीय देशों से प्राप्त भेंट पर इनका निर्वाह होता है। जब लोग दलाई लामा की पूजा करते हैं तो वे उसे एक सिंहासन पर बैठा देते हैं। इस पर एक गलीचा रहता है उसी पर वह पलथी मारकर बैठ जाता है। उसके भक्त उसके आगे बड़ी नम्रता से साष्टाङ्ग दंडवत करते हैं परन्तु वह उनका कुछ भी सत्कार नहीं करता। यहाँ तक कि बड़े-बड़े

राजा महाराजाओं से बोलता तक नहीं। वह केवल अपना हाथ उनके मस्तक पर रख देता है और वे समझते हैं कि हमारे सब पाप छूट गये। उनका यह भी कहना है कि वह सर्वज्ञ और हृदय की भीतरी बातों को भी जानता है। लगभग २०० बड़े बड़े लामे उनके शिष्य हैं। वे लोगों से कहते फिरते हैं कि दलाई लामा अमर है और जब जब वह मरता हुआ दिखलाई पड़ता है तब तब वह केवल एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करता है।

चीन देश के विद्वानों का चिरकाल से ऐसा मत है कि दलाई लामा के निवास मन्दिर के पुस्तकालय में प्राचीन काल से बहुत सी पुरानी पुस्तकें छिपी रक्खी हैं। वर्तमान राजा को प्राचीन ग्रंथों के शोध करने का बड़ा शौक है, उसे लोगों के उपरोक्त मत का इतना विश्वास हो गया है कि उसने ग्रंथों को ढूँढ़ निकालने का दृढ़ संकल्प कर लिया है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसे पहले एक ऐसे व्यक्ति की खोज करने की चिन्ता हुई जो प्रचीन भाषा और लिपि दोनों का पंडित हो। अन्त में "काउन्ट" नाम का एक विद्वान् उसको मिल गया। उसकी आयु ५० वर्ष की थी। वह बड़ा गंभीर, उदार चित्त और एक अच्छा वक्ता था। कई वर्ष पेकिन में रहने के कारण उसकी एक लामा से प्रगाढ़ मैत्री हो गई थी। उसी की सहायता से तिब्बत में रहने वाले लामों की भाषा का उसे अच्छा ज्ञान हो गया था।

भाषा और लिपि की योग्यता रखने के कारण ही काउन्ट ने अपना काम प्रारम्भ कर दिया। जनता पर उसका अच्छा प्रभाव पड़ने के लिए राजा ने उसे अमूल्य वस्त्र प्रदान किये और प्रधान मंत्री के "कोलीओ" पद से उसे विभूषित भी कर दिया। राजा ने दलाई लामा के लिए अमूल्य उपहार भेजे और अपने हाथ से लिख कर निम्नलिखित आशय का एक पत्र भी दिया।

"ईश्वर के मानवीय प्रतिनिधि, श्रेष्ठ, अतिपवित्र, पूजनीय श्री गुरु जी के कमल चरणों में अनेकानेक साष्टाङ्ग प्रणाम।

भगवान, मैं चीन देश का राजा और संसार भर का महाराजा अपने मुख्य मंत्री काउत्सू द्वारा अत्यंत नम्रता और सत्कार के साथ आपके चरणारविन्दों में बार-बार अपना सर झुकाता हूँ और अपने संबन्धियों और अपने देश के कल्याण के लिये आपके आशीर्वाद की भिक्षा माँगता हूँ।

प्राचीन ग्रन्थों के शोध करने और पुरातनकालीन ज्ञान को पुनर्जीवित कर उसको ग्रहण करने की मेरी प्रबल लालसा है। मुझे पता चला है कि आपके प्राचीन ग्रन्थ-रत्नागार में कुछ अमूल्य पुस्तकें हैं और जिनको दीर्घकाल होने के कारण विद्वान से विद्वान मनुष्य भी समझने के लिए नितान्त असमर्थ हैं। उनको नष्ट होने से बचाने के लिए मैंने अपने "काउत्सू" नामक अत्यन्त विद्वान और माननीयमंत्री कोपूर्ण अधिकार देकर आपकी सेवा में भेजा है। उक्त ग्रन्थ-रत्नागार में प्रविष्ट होकर प्राचीन ग्रन्थों को पढ़ कर छान-बीन करने की आज्ञा आप उसे दे दीजिये। यही मेरी प्रार्थना है। मुझे पूर्ण आशा है कि प्राचीन भाषा में अत्यन्त निपुण होने के कारण पुराने से पुराने ग्रन्थों को वह भलीभाँति समझ लेगा। उसे इस बात की भी ताकीद कर दी गई है कि यह मेरे आंतरिक भावों को आपके सम्मुख प्रगट करके जिस प्रकार हो आपकी आज्ञा ग्रहण करे।"

काउत्सू ने अपने प्रवास की बड़ी लम्बी-चौड़ी रामकहानी लिखी है, जिसको पढ़कर आश्चर्य होता है किन्तु उसे सविस्तार कहकर मैं आपके अमूल्य समय को नष्ट नहीं करना चाहता। इङ्गलैंड लौटने पर मेरा विचार है कि सारी बातें अङ्गरेजी भाषा में लिखकर प्रसिद्ध करूँ। यहाँ पर केवल इतना ही लिखना चाहता हूँ कि वह उस पवित्र प्रान्त में पहुँचा और मूल्यवान भेंट देने के कारण इच्छित स्थान तक पहुँचने में फलीफूत हुआ। उस पवित्र विद्यालय में रहने के लिए उसे एक स्थान मिला और एक विद्वान लामा ने इस पवित्र काम में उसको सहायता देने का वचन भी दिया। वह ६ मास पर्यन्त रहा और इस बीच में

उसने कुछ प्राचीन अमूल्य ग्रन्थों का अनुसंधान भी किया। इन ग्रंथों में कुछ वाक्य उसने अलग लिख लिये और उनके लेखक और, जिस समय जिस स्थान में वे लिखे गये थे, उस समय और उस स्थान का एक अच्छा ब्योरा अनुमान से उसने दिया है, जिससे सिद्ध होता है कि काउत्सू कितना बड़ा विद्वान, विचारवान और बुद्धिमान था।

शोधे हुए ग्रंथों में से एक बड़ा प्राचीन है। सैकड़ों वर्ष तक बड़े बड़े लामे भी उसे नहीं समझ सके। यह नीति सम्बन्धी एक छोटी सी पुस्तक है और प्राचीन गिमना सोफिस्टस अथवा ब्राह्मण भाषा और लिपी में लिखी हुई है। यह पुस्तक कहाँ लिखी गई अथवा इसे किसने लिखा, काउत्सू इसका कुछ पता नहीं देता। उसने इसका चीनी भाषा में अनुवाद किया। यद्यपि उसके कथनानुसार मूल ग्रन्थ की रोचकता अनुवादित ग्रन्थ में नहीं आई। पुस्तक के सम्बन्ध में वान्भीज और दूसरे विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न हैं। जो इसकी विशेष प्रशंसा करते हैं उनका कहना है कि इस पुस्तक का रचयिता तत्ववेत्ता कानफ्यूशस है। मूल पुस्तक खो गई है। ब्राह्मणी भाषा में लिखी हुई पुस्तक खोई हुई पुस्तक का अनुवाद है। दूसरा दल कहता है कि कानफ्यूशस का समकालीन और टेओसी पंथ का संस्थापक चीन देश के दूसरे तत्ववेत्ता ल्याओ कियून ने इसे निर्माण किया। परन्तु भाषा के सम्बन्ध में दोनों दलों के विचार समान हैं। एक तीसरा दल और है। वह पुस्तक के कुछ विशिष्ट भावों और लक्षणों को देख कर कहता है कि पुस्तक को डंडमिस नाम के ब्राह्मणों ने लिखा था। उसने सिकन्दर बादशाह के पास एक पत्र भेजा था जो योरोपीय लेखकों को मालूम है। तीसरे दल से काउत्सू का मत बहुत कुछ मिलता-जुलता है। वह कहता है कि पुस्तक का लेखक कोई प्राचीन ब्राह्मण है और उसकी ओजस्विनी भाषा से ज्ञात होता है कि यह मूल ग्रन्थ है, भाषान्तर नहीं है। शङ्का एक बात की होती है कि उसकी योजना (Plan) पूर्वीय लोगों के लिये बिल्कुल नवीन है और यदि उसके विचार पूर्वीय देशों के विचार से

न मिलते अथवा उसकी भाषा प्राचीन न होती तो लोग यही ख्याल कर बैठते कि इस पुस्तक का रचयिता कोई योरोपियन था।

लेखक चाहे जो कोई रहा हो किंतु इसका जयनाद इस नगर और साम्राज्य भर में गूंज रहा है। और हर प्रकार के लोग बड़े चाव से इसे पढ़ते हैं। यही देख कर इसको अँग्रेजी भाषा में भाषांतर करने का मेरा भी चित्त उत्सुक हो उठा है। आशा है यह श्रीमान के लिये एक अच्छा उपहार होगा। दूसरा उद्देश्य अनुवाद करने का मेरा यह है कि यदि मेरा अनुवाद आपको पसन्द आया तो आप स्वयं अनुमान कर लेंगे कि मूल ग्रन्थ कितना महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। जिस ढङ्ग पर मैंने अनुवाद किया है, उस ढङ्ग पर अनुवाद करने का विचार पहिले मेरा नहीं था। किन्तु पुस्तक के पवित्र विचार, उसके उच्च भाव और छोटे वाक्यों को देख कर मुझे विवश होकर वर्तमान ढङ्ग पर अनुवाद करना पड़ा। भाषांतर करते समय सालोमान और प्रोफेसर के रचे हुए ग्रन्थों की भी सहायता मैंने ली है।

प्रस्तुत अनुवाद से यदि श्रीमान का कुछ भी मनोरंजन हुआ तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी, यहाँ के लोग और उनके देश की व्यवस्था मैं दूसरे पत्र में लिखूँगा।

इङ्गलैंण्ड में पहले पहल जब यह पुस्तक प्रकाशित हुई तो उसकी अच्छी बिक्री हुई और थोड़े ही समय में अर्थात् सन् १८१२ ई० तक इसके ५० संस्करण निकल गये। इसका अनुवाद फ्रेंच, जर्मन, इटैलियन, वेल्श भाषा में हुआ। भिन्न-भिन्न देश के कवियों ने इसको कविता रूप में प्रकाशित किया और चित्रकारों ने इसके भावों का चित्र खींच-खींच कर इसका गौरव बढ़ाया।

प्रस्तुत अनुवाद का मुख्य उद्देश्य मनुष्य मात्र, मुख्य कर विद्यार्थियों में जागृति फैलाने का है। मनुष्य जीवन यात्रा सुखमय किस प्रकार बनाई जा सकती है इसके [illegible] यथार्थ और उत्तम रीति से

अच्छे ढङ्ग पर बतलाये गये हैं। गीता के श्लोकों की तरह विषय पाठकों को पहली दृष्टि में बड़े सूक्ष्म दिखलाई पड़ेंगे किन्तु उनका महत्व उस समय मालूम हो सकता है जब पुस्तक एकान्त में स्थिर चित्त हो कर ध्यान पूर्वक पढ़ी जाय।

महाराज भरथरी का कथन है:—

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणात्।
मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरंगायते॥
व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते।
यस्यांगेऽखिललोकवल्लभतमं शील समुन्मीलति॥

लोगों का कहना वृथा है कि मनुष्य का आभूषण गहना है और उत्तम-उत्तम वस्त्रों से मनुष्यों का मान होता है। सच बात तो यह है कि केवल सदाचार ही एकमात्र मनुष्य का सच्चा आभूषण है। मैं मानता हूँ कि सदाचार के उपदेश अन्य धर्मों की अपेक्षा हमारे धर्म में बहुत से भरे पड़े हैं, मैं मानता हूँ कि हमारा धर्म सदाचार ही के साँचे पर ढला है किंतु मैं यह मानने के लिये तैयार नहीं हूँ कि हमारे पास सदाचार के साधन होते हुये भी हममें से कितने सच्चे सदाचारी हैं। वाहरी सदाचारी बहुत से मिलेंगे किंतु सच्चे सदाचारी हजार में दो ही चार मिल सकेंगे।

इसके प्रमाण में सर्वसाधारण की गई बीती हालत को छोड़कर मैं विद्यार्थियों की वर्तमान स्थिति की किंचित् समालोचना करता हूँ। दृष्टि डालते ही शोक से कलेजा थर-थर काँपने लगता है। तन क्षीण, मन मलीन और हृदय कमजोर दिखलाई पड़ते हैं। व्यग्रता उनका पीछा नहीं छोड़ती, किसी काम में उनका चित्त नहीं लगता। लगे कहाँ से जब कि दुर्व्यसन का घुन उसके शरीर में लगा हुआ है। उन्हीं दुर्व्यसनों के कारण, जिनके नाम लेने से घृणा उत्पन्न होती है, अल्प जीवन ही में उन्हें कराल काल के गाल में जाना पड़ता है। और उनके जाने के साथ ही साथ हमारी मातृ-भूमि भारत माता की आशाओं पर भी पानी

फरता जाता है। हा शोक! जिस जाति में महाराज दधीचि ऐसे स्वदेश भक्त हो गये, जिन्होंने देश के लिये अपने पञ्चभूत शरीर को अर्पित कर दिया, जिस जाति में महाराणा प्रताप ऐसे अग्रगण्य वीर उत्पन्न हुये, जिन्होंने वन-वन भटकना और सूखी रोटियों पर निर्वाह करना पसन्द किया, किंतु यवनों की अधीनता स्वीकार नहीं की, जिस जाति में गुरु गोविंदसिंह ऐसे धार्मिक गुरु पैदा हुए, जिन्होंसे धर्म के लिये अपने प्राण प्यारे दोनों पुत्रों को दीवारों में चुनवा दिया किंतु मुँह से "उफ" तक नहीं निकाला, उस जाति के बच्चे ऐसे कायर, निर्वीर्य और कर्तव्यहीन हों, यह कितने शोक और लज्जा की बात है।

किंतु यह सब समय का फेर है। इतना ह्रास होते हुये भी यदि कुछ नियम बच्चों के सामने रक्खे जायँ और उनके संरक्षक उनको उन्हीं के अनुसार अपने आचार बनाने के लिये उन्हें विवश करें तब भी वर्तमान स्थिति में बहुत कुछ परिवर्तन हो सकता है! संस्कृत साहित्य में ऐसी अनेक पुस्तकें मिलेंगी जिनमें ऐसे-ऐसे उत्कृष्ट नियमों का अभाव नहीं है किन्तु हिन्दी साहित्य में ऐसी पुस्तकें कदाचित् बहुत कम मिलें।

प्रस्तुत पुस्तक में ये नियम जन्म से लेकर मृत्यु पर्य्यंत बड़ी खूबी से बतलाये गये हैं। इसको पढ़कर सदाचार निर्माण में पाठकों को यदि कुछ भी सहायता मिली तो मैं अपने अनुवाद को सार्थक समझूंगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि जिस अंग्रेजी पुस्तक से यह पुस्तक अनुवादित की गई है उसकी भाषा कितनी पेचीदी और कहीं कहीं पर कितनी क्लिष्ट है। संभवतः मूल पुस्तक की रोचकता इस पुस्तक में लाने का प्रयत्न किया गया है किंतु हम स्वयं अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनकर नहीं कह सकते कि इस प्रयत्न में हमें कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है। पाठक इसका निर्णय स्वयं कर लें।

दारागञ्ज, प्रयाग
रामनवमी १९७६

केदारनाथ गुप्त

विषयानुक्रमणिका

पूर्वार्द्ध

पहला खण्ड

व्यक्तिगत मानवी कार्य

			पृष्ठाङ्क
पहिला प्रकरण	कार्याकार्य	...	१—२
दूसरा ,,	विनय	... ...	२—४
तीसरा ,,	उद्योग	... ...	४—५
चौथा ,,	ईर्षा	... ...	६—७
पाँचवाँ ,,	तारतम्य	... ...	७—६
छठवाँ ,,	धैर्य	... ...	१०—११
सातवाँ ,,	संतोष	... ...	११—१२
आठवाँ ,,	संयम	... ...	१२—१३

दूसरा खण्ड

मनोधर्म

पहला प्रकरण	आशा और भय	... ...	१४—१५
दूसरा ,,	आनन्द और दुःख	... ...	१५—१७
तीसरा ,,	क्रोध	... ...	१७—१८
चौथा ,,	दया	... ...	१६—०
पाँचवाँ ,,	वासना और प्रेम	... ...	२०—०

तीसरा खण्ड

				पृष्ठाङ्क
पहला प्रकरण		...	...	२१—२३

चौथा खण्ड

कौटुम्बिक सम्बन्ध

पहला प्रकरण		पति	...	...	२४—२५
दूसरा	,,	पिता	...	...	२५—२६
तीसरा	,,	पुत्र	...	...	२७—२८
चौथा	,,	सहोदर भाई	...	...	२८—०

पाँचवाँ खण्ड

ईश्वर की करनी अथवा मनुष्यों में दैविक अन्तर

पहला प्रकरण		चतुर और मूर्ख	...	...	२६—३०
दूसरा	,,	धनी और निर्धन	...	...	३०—३२
तीसरा	,,	स्वामी और सेवक	...	...	३३—३४
चौथा	,,	शासक और शासित	...	...	३४—३६

छठवाँ खण्ड

सामाजिक कर्त्तव्य

पहला प्रकरण		परहित बुद्धि	...	...	३७—०
दूसरा	,,	न्याय	...	...	३८—३६
तीसरा	,,	परोपकार	...	...	३६—४०
चौथा	,,	कृतज्ञता	...	...	४०—४१
पाँचवा	,,	निष्कपटता	...	...	४१—४२

सातवाँ खण्ड

		पृष्ठाङ्क
पहला प्रकरण ईश्वर	... ...	४३—४५

उत्तरार्ध

पहला खण्ड

सामान्यतः मनुष्य प्राणी के विषय में

पहला	प्रकरण	मानवी शरीर और उसकी बनावट	४६—४७
दूसरा	,,	इन्द्रियों का उपयोग ...	४७—४९
तीसरा	,,	मनुष्य की आत्मा, उसकी उत्पत्ति और धर्म	४९—५२
चौथा	,,	मानवी जीवन और उसका उपयोग ...	५३—५७

दूसरा खण्ड

मानवी दोष और उनके परिणाम

पहला	प्रकरण	वृथाभिमान	५८—६०
दूसरा	,,	चंचलता	६०—६४
तीसरा	,,	दुर्बलता	६४—६६
चौथा	,,	ज्ञान की अपूर्णता	६७—७०
पाचवाँ	,,	दुःख	७०—७२
छठवाँ	,,	निर्णय	७२—७६
सातवाँ	,,	[illegible]	७६—७९

तीसरा खण्ड

स्वपरविघातक मानवी मनोधर्म

		पृष्ठाङ्क
पहला प्रकरण	लोभ	८०—८२
दूसरा ,,	अतिव्यय	८२—८३
तीसरा ,,	बदला	८३—८७
चौथा ,,	क्रूरता द्वेष और मत्सर	८७=८९
पाँचवाँ ,,	हृदय का क्षोभ (उदासीनता)	९०—९४

चौथा खण्ड

मनुष्यों को अपनी जातिवालों से मिलनेवाले लाभ

पहला प्रकरण	कुलीनता और प्रतिष्ठा	९५—९८
दूसरा ,,	ज्ञान और विज्ञान	९८—१०१

पाँचवाँ खण्ड

स्वाभाविक योगायोग

पहला प्रकरण	संपत्काल और विपत्काल	१०२—१०४
दूसरा ,,	क्लेश और व्याधि	१०४—१०५
तीसरा ,,	मृत्यु	१०५—१०६

मनुष्य जीवन की उपयोगिता

पूर्वार्द्ध

पहिला खण्ड

व्यक्तिगत मानवी कार्य



पहला प्रकरण

कार्य्याकार्य विचार

परमेश्वर ने मनुष्य को सर्व श्रेष्ठ बनाया है। उसने उसको विचार-शक्ति दी है। उसका कर्त्तव्य है कि वह इस विचार-शक्ति से काम ले। यदि नहीं लेता तो उसमे और एक साधारण पशु में कोई अन्तर नहीं है।

दो-चार कोस की यात्रा करने के लिए हम कैसे कैसे बँधान बाँधते हैं। कौन कौन हमारे साथ चलेगा, रास्ता खराब तो नहीं है, खाने पीने का सामान तो ठीक है, कुल कितना खर्च पड़ेगा, इन सब बातों की हमें कितनी चिन्ता रहती है। जब इतनी छोटी यात्रा के लिए इतनी झंझट करनी पड़ती है तो इस बड़ी संसार यात्रा के लिए कितनी बड़ी झंझट की आवश्यकता है, इसका अनुमान पाठक स्वयं कर सकते हैं।

ऐ मनुष्य, जरा सोचो तो सही तू इस संसार में किस वास्ते पैदा किया गया है। अपनी शक्तियों का ख्याल कर। अपनी आवश्यकताओं पर विचार कर। तू अपने कर्तव्य आप से आप समझ जायगा और विघ्न-बाधाओं से बचा रहेगा।

जो तुझे कहना है उस पर बिना विचार किये और उसका जो परिणाम होगा उस पर बिना सूक्ष्म निरीक्षण किये तू कुछ न बोल। ऐसा करने से अपकीर्ति का भय न रहेगा। किसी के सामने लज्जित न होना पड़ेगा और पश्चात्ताप और चिन्ता से मुक्ति मिल जायगी।

अविचारी मनुष्य का अपनी जीभ पर कुछ भी वश नहीं रहता। वह जो मन में आता है बड़बड़ा डालता है। परिणाम यह होता है कि उसे अपनी ही बातों में उलटी मुँह की खानी पड़ती है।

मनुष्य नहीं जानता कि इस घेरे के उस ओर क्या है किन्तु तेजी से दौड़कर फाँदना चाहता है। संभव है उसका पैर गढ़े में पड़ जाय यही दशा उस मनुष्य की होती है जो बिना आगा पीछा सोचे सहसा किसी काम में हाथ डाल बैठता है।

इसलिए पहिले कार्य का विचार कर और बुद्धि और विचार-शक्ति से काम ले। ऐसा करने से यह संसार-यात्रा सुलभ होगी और तू सुरक्षित स्थान पर पहुँच जायगा।

दूसरा प्रकरण

विनय

सारे संसार की ओर यदि हम एक बार दृष्टिपात करें तो यह बात सहज ही में मालूम की जा सकती है कि मनुष्य प्राणी एक कितना क्षुद्र जीव है। ऐसा होते हुए फिर ऐ मनुष्य, तू अपनी बुद्धि और ज्ञान का घमंड क्यों करता है।

अपने को अज्ञानी जानना ही ज्ञानी होने की पहिली सीढ़ी है, और यदि तू चाहता है कि दूसरे हमें मूर्ख न समझें तो भी अपने को बुद्धिमान समझना छोड़ दे।

जिस प्रकार सादा वस्त्र ही एक सुन्दर स्त्री को सब प्रकार अलंकृत कर देता है, उसी प्रकार प्रशस्त और पवित्र आचरण ही बुद्धिमत्ता का सर्वोत्तम आभूषण है।

शीलवान मनुष्य के विनययुक्त भाषण से सत्य में और भी अधिक तेजस्विता आती है। मनुष्य को अपने कथन का सदैव संकोच अथवा अविश्वास मालूम होते रहना चाहिये। कोई भी बात बिल्कुल साहस-पूर्वक और विश्वास से न कहना चाहिये। क्योंकि प्रत्येक बात की सच्चाई मनुष्य की बुद्धि में नहीं आ सकती।

केवल अपनी ही बुद्धिमत्ता पर भरोसा न करो। अपने मित्रों की भी बातों पर ध्यान दो और उनसे लाभ उठाओ।

जब कोई तुम्हारी प्रशंसा कर रहा हो तो उसकी ओर से अपने कानों को फेर लो और उस पर विश्वास न करो; क्योंकि वह मदिरा से भी अधिक हानिप्रद है। परमेश्वर को छोड़कर अन्य कोई भी निर्दोष नहीं है, इसलिये सबसे पीछे ही अपने को निर्दोष समझना अच्छा है

जिस प्रकार घूंघट स्त्री सुन्दरता को बढ़ा देता है उसी प्रकार विनय की छाया मनुष्य के सद्गुणों को और अधिक उत्तम बना देती है।

परन्तु अभिमानी मनुष्य की ओर देखो। वह तड़क भड़क की पोशाक पहिन कर इधर उधर देखता हुआ बड़े अभिमान के साथ सड़कों पर चलता है। उसे सदैव यही पड़ी रहती है कि लोग हमारी ओर देखें, आश्चर्य करें, और बड़े अदब से झुककर हमें सलाम करें।

वह अपनी गरदन सीधी किये रहता है और गरीब गुरबों की ओर ध्यान नहीं देता; वह अपने से कम दरजे वालों के साथ बड़ी धृष्टता का बर्ताव करता है। परिणाम यह होता है कि उससे ऊँचे दरजे के लोग भी उसके घमंड और मूर्खता का सहज ही में उपहास करने लगते हैं।

घमंडी मनुष्य दूसरों की सम्मति का अनादर करता है। उसे अपनी ही बुद्धि का भरोसा रहता है किन्तु अन्त में उसे धोखा खाना पड़ता है।

वह अपने ही अहङ्कारपूर्ण विचारों में मग्न रहता है, और दिन भर अपनी ही प्रशंसा सुनने और कहने में उसे आनन्द मिलता है।

परन्तु इधर तो यह आत्मश्लाघा में चूर रहता है और उधर हाँ जी हां जी करने वाले खुशामदी उसे चूस कर फेंक देते हैं।

तीसरा प्रकरण

उद्योग

जो दिन बीत गये वे लौटनेवाले नहीं और जो आनेवाले हैं उन पर कोई भरोसा नहीं, इसलिये, ऐ मनुष्य तुझे उचित है कि तू न भूत-काल के लिये पश्चात्तार कर और न भविष्य पर अधिक विश्वास रख केवल वर्तमान काल का उपयोग करना अपना लक्ष्य बना। यह समय अपना है और आगे चलकर क्या होगा, यह कोई नहीं जानता। अत-एव जो कुछ करना है उसे शीघ्र ही कर डाल। जो काम प्रातःकाल हो सकता है उसे सायंकाल पर मत छोड़।

आलस करने से आवश्यक वस्तुयें भी प्राप्त नहीं होतीं, जिससे मनुष्य को बहुत दुख होता है, परन्तु परिश्रम करने से आनन्द ही आनन्द मिलता है। उद्योगी को किसी बात की कमी नहीं रहती क्योंकि उन्नति और विजय उसके पीछे पीछे चलते हैं।

जो कभी खाली नहीं बैठता और आलस को शत्रु समझता है वही धनवान है, वही अधिकार-संपन्न है, वही आदरणीय है और बड़े बड़े राजे महाराजे उससे ही सलाह लेने की इच्छा करते हैं।

उद्योगी मनुष्य मुँह अँधेरे उठता है और अधिक रात गये सोता है; वह अपने मन और शरीर को मनन और व्यायाम द्वारा सशक्त बनाये रहता है।

परन्तु आलसी मनुष्य संसार की कौन चलावे स्वयं अपने ही को भार-स्वरूप बन जाता है। उसका समय काटे नहीं कटता। वह दर-दर भटकता फिरता है; उसे सूझ नहीं पड़ता कि मुझे क्या करना चाहिये। बादल की परछाईं की भाँति उसकी आयु व्यतीत हो जाती है और वह कोई ऐसी वस्तु नहीं छोड़ जाता जिसको देखकर लोग उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका स्मरण करें।

व्यायाम के अभाव से उसका शरीर रोगी हो जाता है। काम करना चाहता है परन्तु करने की सामर्थ्य नहीं; मन में अन्धकार का परदा पड़ जाने के कारण उनके विचार भी गड़बड़ा जाते हैं। उसको ज्ञानोपार्जन की लालसा होती है किन्तु उसमें उद्योग कहाँ। बादाम खाना चाहता है किन्तु छिलके तोड़ने का कष्ट कौन उठावे?

आलसी मनुष्य के घर में बड़ी गड़बड़ी रहती है। उसके नौकर चाकर उड़ाऊ चोर और झगड़ालू हो जाते हैं और विनाश की ओर खींचते रहते हैं। वह आँखों से देखता है, कानों से सुनता है और बचने का प्रयत्न भी करता है किन्तु उससे निकल कर भागने का उसमें साहस कहाँ। अन्त में आपत्ति तूफान की तरह उसे आ घेरती है और मृत्यु पर्य्यन्त उसे पश्चात्ताप करना और लज्जित होना पड़ता है परन्तु समय निकल जाने पर फिर क्या हो सकता है!

चौथा प्रकरण

ईर्ष्या

यदि तेरी आत्मा सम्मान की भूखी है, यदि तेरे कान अपनी प्रशंसा सुनने के लिये आतुर हो रहे हैं, तो जिस धूलि (भौतिक पदार्थ) से तू बना है उससे दिल हटाकर किसी स्तुत्य (आध्यात्मिक) वस्तु को अपना ध्येय बना ले।

आकाश मंडल को चुम्बन करने वाले इस शाह बलूत के वृक्ष को देख। यह किसी समय पृथ्वी माता के पेट में एक क्षुद्र बीज था।

जो कुछ व्यवसाय करता है उसमें सर्वोच्च होने का प्रयत्न कर; अच्छे काम में किसी को भी अपने आगे न बढ़ने दे। दूसरों के गुणों का डाह न कर, अपने गुणों की वृद्धि करने की ओर ध्यान दे।

अपने प्रतिद्वन्दी को निन्दनीय साधनों का अवलम्बन लेकर दबाने की चेष्टा न कर; हृदय में पवित्र भाव रखते हुये उसके आगे निकल जाने का प्रयत्न कर। यदि सफल मनोरथ न हुआ तो कम से कम तेरा सम्मान तो अवश्य होगा।

सात्विक ईर्ष्या से मनुष्य की आत्मोन्नति होती है। उसको अपनी कीर्ति की जिज्ञासा लगी रहती है। और खिलाड़ी की तरह अपने काम की दौड़ लगाने में उसे आनन्द मिलता है। दुखों की कुछ परवाह न करता हुआ वह ताड़ वृक्ष की तरह बढ़ता है और उकाब की तरह अपना लक्ष्य सूर्य रूपी अपने गौरव की ओर लगाये रहता है। रात्रि के समय स्वप्न में भी उसे श्रेष्ठ और बड़े पुरुषों के उदाहरण दिखलाई पड़ते हैं, और दिन भर उन्हीं के अनुकरण करने में उसे प्रसन्नता होती है। वह बड़े-बड़े बन्धान बाँध कर उन्हीं में जोश और उत्साह के साथ लगा रहता है, और फिर उसकी कीर्ति संसार के एक छोर से दूसरे छोर तक फैल जाती है।

जिस प्रकार घास की पत्ती हवा के झकोरे से हिलने लगती है, उसी प्रकार दुःख की केवल कल्पना उसको कँपा डालती है। संकट के समय वह पागल-सा हो जाता है। उसे सूझ नहीं पड़ता कि क्या करना चाहिये। निराशा, उसे व्याकुल करे देती है। यह सब क्यों ? केवल धैर्य्य न होने के कारण।

सातवाँ प्रकरण

सन्तोष

परमेश्वर सर्वव्यापी है। वह तेरे मन की बात जानता है। केवल दयालु होने के कारण ही वह कुछ इच्छाओं को पूर्ण नहीं करता। प्रत्येक मनुष्य कहता है कि ईश्वर हमारे ऊपर कुपित है; वह हमें दुःख दे रहा है। उसके घर में न्याय नहीं। यदि ऐसा न होता तो हमारी ऐसी अच्छी हालत होकर भी ऐसी बुरी दशा क्यों होती ? परन्तु प्रत्येक की ऐसी अच्छी हालत होकर भी ऐसी बुरी दशा क्यों होती ? परन्तु प्रत्येक को यह भी ध्यान रखना चाहिये कि अपनी-अपनी योग्यता के अनुरूप सब को इस संसार में स्थान मिलता है। उपयुक्त इच्छा पूर्ण होने और यश मिलने की व्यवस्था परमेश्वर ने पहले ही से निश्चित कर रक्खी हैं। अपनी बेचैनी का, जिस दुर्दैव के लिये खेद करते हो उसका और उसी प्रकार अपने पागलपन, घमण्ड और क्रोध का, कारण ढूँढ़ निकालो ! ईश्वर के प्रबन्ध के विषय में वृथा बकबक न करो, पहिले अपना अन्तःकरण शुद्ध बनाओ।

मेरे पास अगर द्रव्य होता मुझको अधिकार मिला होता अथवा मुझे खाली रहने को मिलता तो मैं बड़ा सुखी होता, ऐसा कभी मन में न लाओ; क्योंकि ये जिसके पास होते हैं उसके मार्ग में तो अड़चनें पड़ा करती है। दरिद्र मनुष्य धनवानों की चिन्ताओं और क्लेशों से बिल्कुल अनभिज्ञ रहता है। वह नहीं जानता कि अधिकार के पीछे

जब वह (विषय) अपने स्वादिष्ट पदार्थों को तुम्हारे सामने मेज पर रक्खे, जब उसकी मदिरा प्याले में चमकने लगे जब हँसकर तुम्हें वह आनन्द और सुख की तरफ खींचने लगे तभी धोखे की वेला समझो और उसी समय अपनी बुद्धि से बड़ी होशियारी के साथ काम लो। ऐसे समय यदि तुम उसकी सम्मति के अनुसार चलो तो समझ रक्खो तुमने धोखा खाया। जिस झूठे आनन्द को तुम देखते हो वस्तुतः वह दुःख है। उसके उपभोग से तुम रोगी बन जाओगे और अन्त में तुम्हारी मृत्यु हो जायगी।

विषय की मेहमानी की ओर देखो, उसके निमन्त्रित पाहुनों की ओर दृष्टिपात करो; जिसको उसने अपने पञ्जे में कर लिया है उनकी दशा पर किञ्चित विचार करो। क्या वे दुर्बल, रोगी और निरुत्साही नहीं देख पड़ते !

थोड़े ही दिन भोग विलास करने के पश्चात् उन्हें सारी आयु दुःख और निरुत्साह के साथ व्यतीत करनी पड़ती है। विषयों के कारण भूख मर जाती है, और इसीलिए उत्तम से उत्तम पदार्थों को खाने के लिए भी उनकी इच्छा नहीं चलती। अन्त में वे उसके पंजे में फँसकर नष्ट हो जाते हैं। ईश्वर-दत्त वस्तुओं का जो दुरुपयोग करते हैं उन्हें सचमुच ऐसा ही दण्ड मिलना चाहिये।

दूसरा खण्ड

मनोधर्म

पहला प्रकरण

आशा और भय

आशा गुलाब के फूल से भी अधिक मधुर और मन को आनन्द देने वाली है, परन्तु भय की कल्पना भी बड़ी भयानक होती है। तथापि आशा में भूलकर और भय से डर कर उपयुक्त काम करने से पीछे मत हटो। सर्वदा समचित्त होकर प्रत्येक बात का सामना करने के लिये तैयार रहो।

सज्जन लोग मृत्यु से नहीं डरते; जो कोई पाप नहीं करता उसे किसी का डर कैसा ? प्रत्येक कार्य्य में समुचित विश्वास द्वारा अपने प्रयत्नों को उत्तेजित करते रहो। जहाँ तुमने विजय में सन्देह किया वहीं तुम्हारा पराभव हुआ।

झूठा भय दिखा कर अपने मन को न डराओ, और कल्पनाजन्य भ्रम द्वारा अपना दिल छोटा न करो। आशा से ढाढ़स और भय से आपत्ति का आविर्भाव होता है। सफलता अथवा निष्फलता अपने ही विश्वास और दृढ़ता पर अवलम्बित रहती है।

आशाशून्य होने के कारण ही तो तुम कहते हो कि हम इस काम को नहीं कर सकते। किन्तु यदि दृढ़तापूर्वक उसमें लगे रहो, तो जय अवश्य प्राप्त कर सकते हो। ऐसी आशा में मूर्खों को आनन्द होता है, और बुद्धिमान उनकी कुछ परवाह नहीं करते।

मन में कोई भी इच्छा करने के पूर्व खूब सोच विचार लो और अपनी आशा को मर्य्यादा के बाहर न लाओ; अर्थात् जो वस्तु मिल सकती है आशा उसी की करो। यदि ऐसा करोगे तो प्रत्येक काम में तुम्हें सफलता मिलेगी और निराशाओं में व्याकुल होने का समय न आवेगा।

दूसरा प्रकरण

आनन्द और दुःख

इतनी खुशी न मनाओ कि तुम्हारा मन क्षुब्ध होने लगे और न इतना अधिक दुःख करो कि तुम्हारा दिल छोटा हो जाय। इस संसार में कहीं न तो हद दरजे का सुख है और न हद दरजे का दुःख है। जिस प्रकार दिन के पीछे रात्रि और रात्रि के पीछे दिन आता है उसी प्रकार सुख के पीछे दुःख और दुःख के पीछे सुख होता है। महाकवि कालिदास ने भी कहा है।

कास्यैकांत सुखमुपगतं दुःखमेकांततोवा।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण॥

अर्थात् न सदैव किसी को सुख ही रहता है; और न सर्वदा किसी को दुःख ही रहता है। यह दुःख का चक्र रथ के पहिये की तरह नीचे ऊपर बारी-बारी से घूमा करता है।

अच्छा, तो अब आनन्द का स्थान देखो। बाहर वारनिश लगी होने के कारण यह बड़ा सुन्दर मालूम होता है। उसमें से लगातार आनन्द के झोंके निकलने के कारण तुम उसे पहचान सकते हो। घर की मालकिन बाहर खड़ी हो जाती है, गाती है, लगातार हँसती है और आने जाने वालों से कहती है कि देखो जीवन का आनन्द अन्यत्र कहीं नहीं मिलने का; इसलिये मेरे पास चले आओ।

परन्तु तुम ड्योढ़ी पर पैर तक न रक्खो और न उन लोगों की सोहबत करो जो उनके घर आया जाया करते हैं। वे अपने को बड़े सैलानी जीव लगाते हैं, हँसते हैं, चैन करते हैं, परन्तु उनके सब कामों में मूर्खता और पागलपन भरा रहता है। उनमें दुष्टता कूट कूट कर भरी रहती है, उनका चित्त सदैव बुराई की ओर लगा रहता है; भय उनको चारों ओर से घेर रहता है; और विनाश का गड़ा मुँह फैलाये उनके पैरों तले बैठा रहता है।

अब जरा दूसरी ओर नजर दौड़ाइये और वृक्षों से आच्छादित घाटी में उस दुःख को देखिये जो मनुष्य दृष्टि से परे हैं। उस घर की मालकिन की दशा सुनिये। वह क्लेश से पीड़ित है और दुःख को लम्बी लम्बी आहें भर रही हैं। किन्तु मानवी दुःख पर विचार करने में उसे आनन्द मिलता है।

वह जीवन की साधारण घटनाओं को याद कर करके रोती है। मानवी दुष्टता और दौर्बल्य की चर्चा बैठे किया करती है। सारा संसार उसे पापमय दिखलाई पड़ता है। जिन-जिन वस्तुओं की ओर वह दृष्टि फेंकती है वे सब उसी की तरह नीरस मालूम होती है; और इसी कारण रात दिन उसके घर में उदासीनता का वास रहता है। उसके आश्रम के समीप न जाओ; उसकी हवा में छूत है उससे सदैव बचे रहो नहीं तो वह जीवन रूपी वाटिका को सुशोभित करने वाले फलों को नष्ट कर देगी; और फलों को सुखा डालेगी!

आनन्दाश्रम को छोड़ते समय मनहूस और उदासीनतापूर्ण स्थान की ओर जाने में खबरदारी रक्खो। बीच का मार्ग सावधानतया पकड़ो। यह मार्ग तुमको धीरे-धीरे शांति देवी के कुञ्ज तक पहुँचा देगा। शान्ति उसी के पास है। सुरक्षितता और सन्तोष वहीं है। वह प्रफुल्लित है परन्तु विलासी नहीं है। वह गम्भीर है किन्तु मनहूस नहीं है। वह जीवन के सुख दुःख की ओर सम दृष्टि से देखती है।

जिस प्रकार पर्वत पर से आसपास का दृश्य कई मील तक स्पष्ट देख पड़ता है उसी प्रकार शान्ति देवी के कुञ्ज से उन लोगों का पागलपन और दुःख देखने में आता है जो विलास-प्रिय होने के कारण चैनी और रङ्गीले मित्रों के साथ घूमते फिरते हैं अथवा उदासीनता और निरुत्साहपन में पड़ कर मनुष्य जीवन के दुःख और संकटों के लिए जन्म भर शिकायत करते हैं।

तुम दोनो को सहानुभूति की दृष्टि से देखो, और उनकी भूलों को देख कर अपनी भूलों के सुधारने का प्रयत्न करो।

तीसरा प्रकरण

क्रोध

जिस प्रकार तूफ़ान अपने वेग से वृक्षों को उखाड़ कर फेंक देता है और प्रकृति देवी चेहरे को कुरूप बना देती है। अथवा जिस प्रकार भूकम्प अपने क्षोभ से, नगर के नगर भूतलशायी कर देता है, उसी प्रकार क्रोधित मनुष्य का क्रोध अपने चारों ओर उपद्रव मचाये रहता है। भय और क्रोध उसके पास हाथ जोड़े खड़े रहते हैं। इसीलिये कमजोरी पर विचार करो; उसको स्मरण रक्खो। ऐसा करने से तुम दूसरों के अपराधों को क्षमा कर सकोगे।

क्रोध को अपने पास न फटकने दो उसे अपने पास न आने देना मानों स्वयं अपने हृदय को काटने अथवा अपने मित्र को मारने के लिये तलवार देना है। यदि तुमने किसी की छोटी मोटी बात सह ली तो लोग तुम्हें बुद्धिमान् कहेंगे, और यदि तुमने उसे भुला दिया तो तुम्हारा चित्त प्रसन्न रहेगा।

क्या तुम नहीं देखते हो कि क्रोधी मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट रहती है! इसलिये जब तक तुम्हारे होश हवाश दुरुस्त हैं, तब तक दूसरों का

क्रोध देख कर शिक्षा ग्रहण करो। मनोविकार के चक्कर में पड़ कर कोई बेहूदा काम न कर बैठो। भला यह तो बतलाओ कि भयङ्कर तूफ़ान के समय क्या तुम अपनी नाव समुद्र में छोड़ दोगे ?

क्रोध रोकना यदि कठिन मालूम होता हो तो उसे पहिले ही न आने देना बुद्धिमत्ता है। इसलिये क्रोधोत्पन्न करने वाली प्रत्येक बात से बचे रहो और जब कोई ऐसी बात आने वाली हो तो चौकन्ने हो जाओ। कठोर भाषण से मूर्ख मनुष्य चिढ़ता है परन्तु बुद्धिमान हँस कर इसका तिरस्कार करता है।

किसी से बदला लेने की बात अपने हृदय में मत लाओ। वह तुम्हारे हृदय को पीड़ा देगी और उसके उत्तमोत्तम भावों को मिट्टी में मिला देगी। हानि पहुँचाने की अपेक्षा दूसरों के अपराध क्षमा करने के लिये सदैव तैयार रहो। जो बदला लेने की घात में रहता है वह एक प्रकार से अपने लिये आपत्ति का बीज बो रहा है।

जिस प्रकार पानी डालने से आग बुझ जाती है, उसी प्रकार मृदु भाषण से क्रोधित मनुष्य का क्रोध शांत हो सकता है और वह इस तरह शत्रु से मित्र बन सकता है।

सोचो तो सही, क्रोध करने योग्य कितनी थोड़ी बातें हैं; तब तुम आश्चर्य करोगे कि मूर्खों को छोड़ कर दूसरों को क्रोध किस प्रकार आता है। मूर्ख और अशक्त मनुष्य ही क्रोध अधिक करते हैं। परन्तु स्मरण रक्खो कि इसका परिणाम सिवाय पश्चात्ताप के और दूसरा कुछ शायद ही होता हो। मूर्खता के सामने लाज, और क्रोध के सामने पश्चाताप हाथ जोड़े खड़े रहते हैं।

चौथा प्रकरण

दया

जिस प्रकार वसंत फूलों को पृथ्वी पर बिखेरता है और मेघ जिस प्रकार खेतों को शस्यसंपन्न करता है उसी प्रकार दया अभागे प्राणी मात्र पर कल्याण की वर्षा करती है।

जो दूसरों पर दया करता है वह दूसरों से दया के लिए अपनी शिफारिस करता है। परन्तु जिसको दया नहीं है वह उसका पात्र नहीं।

जिस प्रकार भेड़ों की चिल्लाहट से कसाई का हृदय नहीं पिघलता उसी प्रकार दूसरों के दुःख से निर्दयी का हृदय नहीं पसीजता।

दया के आँसू गुलाब पर के हिम कणों से भी अधिक मोहक होते हैं। इसलिये दीनों के आर्तनाद को सुनकर कान न बन्द करो; और न नर्मल अन्तःकरण वालों को आपत्ति में देखकर कठोर हृदय बन जाओ।

जब अनाथ तुम्हारे पास सहायता के लिये आवें और वे आँखों में आँसू भर कर तुम्हारी मदद माँगें, तो उनके दुःखो पर ध्यान दो और निराश्रितों की यथाशक्ति सहायता करो। रास्ते में भटकते हुए वस्त्रहीन निराधार मनुष्य को शीत से काँपते हुये देखो तो उस समय अपनी उदारता का परिचय दो। दया की छाया उसके ऊपर करके उसके प्राणों की रक्षा करो। ऐसा करने से तुम्हारी आत्मा को शांति मिलेगी।

जब कि गरीब रोगी बिस्तरे पर पड़ा कराह रहा हो, जब कि कोई बदनसीब कारागृह में पड़ा पड़ा सड़ रहा हो, अथवा पके बालवाला एक वृद्ध पुरुष तुमसे दया की इच्छा रखता हो, उस समय भला बताओ तो सही, उनके दुःखों की ओर कुछ भी न ध्यान देकर तुम क्या अपने ऐश व आराम में निमग्न रहोगे?

पाँचवाँ प्रकरण

वासना और प्रेम

नवयुवको खबरदार ! भोग विलास से बचे रहो; और प्रेम के चक्कर न पड़ो। यदि तुम इस फंदे में पड़े तो तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा। उसके लोभ से अंधे होने के कारण तुम विनाश को दौड़कर स्वयं मोल लोगे। इसलिये उस पर दिल न लगाओ, और न उसके मोहक जाल में पड़ कर अपनी आत्मा का बलिदान करो।

नहीं तो सुखसागर को भरने वाला आरोग्यता का स्रोत शीघ्र ही सूख जायगा और आनन्द का झरना निःशेष हो जायगा। तरुण अवस्था ही में तुम बुड्ढे हो जाओगे, और जीवन के प्रभात काल ही में तुम्हारी आयु का सूर्य अस्त हो जायगा।

परन्तु जब सद्गुण और विनय किसी स्त्री के सौंदर्य को बढ़ाते हैं तब उसकी प्रभा आकाशस्थ तारों की अपेक्षा अधिक उज्ज्वल हो जाती है और उसकी शक्ति को कोई रोक नहीं सकता।

उसका हँसना कमल को भी मात करता है; उसका अन्तःकरण कपट, शुद्ध और सत्यपूर्ण होता है; उसकी आँखें भोली भाली होती हैं, उसके मुख के चुम्बन शहद से भी अधिक मीठे होते हैं, और होठों से सुगन्धि निकलती है।

इस प्रकार के मृदु प्रेम को हृदय तल पर स्थान देने में कोई हर्ज नहीं है। उस पर प्रेम की पवित्र और उज्ज्वल ज्योति तुम्हारे हृदय को उदार बनावेगी और उसे इस योग्य कर देगी कि उसमें सच्चे और शुद्ध प्रेम के चिन्ह उभड़ सकें।



तीसरा खण्ड

पहला प्रकरण

स्त्री

ऐ सुन्दरी, बुद्धिमत्ता की बातें सुन और उन्हें अपने हृदय में स्थान दे। मन के सौन्दर्य्य से तेरे शरीर की कांति बढ़ेगी। और गुलाब के सदृश तेरी सुन्दरता कुम्हला जाने पर भी अपनी मोहकता ज्यों की त्यों कायम रखेगी।

तेरी युवा अवस्था में, अथवा जीवन के प्रभात काल में, जब कि पुरुषों की आँखें तेरी ओर आनन्द से लगें और प्रकृति देवी उनके दृष्टिपात का उद्देश तुझे बतावें, तो उस समय उनकी मोहनी वाणी पर सावधानी से विश्वास कर मन को अपने कब्जे में रख और उनकी फुसलानेवाली बातों पर ध्यान न दे।

याद रख, तू पुरुषों की योग्य और सज्ञान संगतिन है; उसके मनोविकार की दासी नहीं है। तेरे जीवन का उद्देश केवल यही नहीं कि तू उसकी कामेच्छा को तृप्ति कर, किन्तु तेरा यह भी कर्तव्य है कि जब वह कष्ट में हो, तो उसकी सहायता कर, धैर्य्य दे, और सारी चिन्ताओं को मधुर भाषण द्वारा दूर कर।

मनुष्य को अपनी ओर कौन खींच ले जाती है? उसको अपने प्रेम-पाश में जकड़ कर उसके हृदय में कौन अपना निवास स्थान बनाती है?

सुगृहिणी का मन निष्कपट होता है; उसके गालों पर विनय की आभा झलकती है। वह सर्वदा काम में लगी रहती है, खाली नहीं

बैठती। उसके वस्त्र स्वच्छ होते हैं; वह मिताहरी, नम्र और सौम्य होती है। वह बुलबुल की तरह बोलती है; और उसके मुख से फूल झड़ते हैं।

उसके शब्दों में बड़ी मोहकता होती है; और वह जब उत्तर देती है तो सचाई और नम्रता के साथ देती है। शरण जाना और आज्ञा पालन ये उसके जीवनोद्देश्य हैं। और इन्हीं के उपलक्ष में शांति और सुख उसे पुरस्कार मिलते हैं।

दूरदर्शिता उसके आगे चलती है और सदाचार उसके दाहिने हाथ की ओर रहता है। उसकी आँखों में ममता और प्रीति रहती हैं; विवेक दंड लिये उसकी भौंहों पर बैठा रहता है। उसके सद्गुणों के भय से दुराचारी मनुष्य की जिह्वा उसके सामने नहीं खुलती।

निन्दक जब अड़ोसी पड़ोसियों के दूषण निकाल कर उनकी निन्दा में डुबे रहते हैं तो वह अपनी उदारता के कारण मुँह पर हाथ धरे चुप-चाप बैठी रहती है। उसके हृदय मन्दिर में सज्जनता होने के कारण उसे दूसरों के अवगुण नहीं दिखलाई पड़ते।

सुखी हैं वे मनुष्य, जिनको ऐसी स्त्रियाँ मिलती हैं; और सुखी हैं वे बालक जिन्हें ऐसी स्त्रियों को माता कहने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

वह जहाँ रहती है वहाँ शांति वास करती है। वह विवेक के साथ हुक्म देती है और उसका पालन होता है। वह प्रातःकाल उठकर अपने घरेलू मामलों पर विचार करती है और प्रत्येक को उसकी योग्यता के अनुसार काम सौंपती है।

अपने कुटुम्ब का प्रबन्ध करने ही में उसे आनन्द मिलता है। इसी प्रकार के कार्य्यों में उसकी सारी शक्ति खर्च होती है। वह किफायत से रहती और अपने घर को साफ सुथरा रखती है। उसके प्रबन्ध की उत्तमता उसके पति का भूषण है। स्त्री की प्रशंसा सुन कर पति को भी भीतर ही भीतर बड़ा आनन्द होता है।

वह अपने बच्चों के मन में चातुर्य्य की बातें कूट कूट कर भर देती है; और स्वयं अपना उत्तम आदर्श उनके सामने रख कर उनका आचरण दुरुस्त करती है। उसकी आज्ञा ही बच्चों का सर्वस्व है और उसके केवल संकेत मात्र से वे उसका पालन करते हैं।

उसके मुँह से शब्द निकला नहीं कि नौकरों ने झट उसका पालन किया नहीं। उसने इशारा किया और काम हुआ; कारण इसका यह है कि नौकर उसके प्रेम-रज्जु में बँधे रहते हैं। दयालु होने के कारण उसका काम और अधिक चौकसी से होता है।

ऐश्वर्य्य पाकर वह फूलती नहीं। आपत्ति का मुकाबिला वह बड़े धैर्य्य से करती है। उसकी सहायता से पति का दुःख हलका हो जाता है और उसकी तीव्रता कम हो जाती है। वह अपने हृदय को स्त्री के हृदय में रखता है; और ऐसा करने से उसके मन को शांति मिलती है।

ऐसी साध्वी को जिसने भार्य्या बनाया है, वह सचमुच सुखी है, और ऐसी साध्वी को 'माता' कहकर जो पुकारता है वह बच्चा धन्य है।



तीसरा प्रकरण

पुत्र

ईश्वर ने जिन प्राणियों को उत्पन्न किया है, मनुष्य का कर्तव्य है कि वह उनसे बुद्धिमानी सीखे और जो शिक्षा वे दें उन्हें अपने जीवन में चरितार्थ करने का प्रयत्न करे।

ऐ मेरे पुत्र जरा जङ्गल में जाकर वहाँ के सारस को देख और उसे अपने साथ संभाषण करने दे। कैसे प्रेम से वह अपने वृद्ध पिता को पंखों में ले जाता है और सुरक्षित स्थान में उसे बैठा कर दाना पानी का कैसा उत्तम प्रबन्ध करता है।

पितृभक्ति, सूर्य्य को समर्पित किये हुए ईरान देश की धूप से भी अधिक मधुर है और पश्चिम दिशा की ओर बहने वाली हवाओं द्वारा प्रसारित अरब देश के मसालों की सुगंधि से भी अधिक आनन्द-दायक है।

अतएव तू अपने पिता का कृतज्ञ रह, क्योंकि उसने तुझे पैदा किया है। अपनी माता को भी तू न भूल, क्योंकि उसने तुझे ९ महीने अपने पेट में रक्खा।

उनकी बातों को सुन क्योंकि वे तेरे लाभ के लिए कही जा रही हैं। तेरा पिता यदि तुझे बुरा भला कहे तो उसे भी कान लगा कर सुन क्योंकि उसने प्रेम से ऐसा कहा है, किसी अन्योद्देश्य से नहीं। उसने तेरी भलाई के लिये रातें जागकर व्यतीत कर दीं, उसने तेरे आराम के लिए बड़ा परिश्रम किया इसलिए उसकी अवस्था का मान रख; उसके सफेद बालों का अपमान न कर।

अपनी दुर्बल बाल्यावस्था और युवावस्था के उद्धतपने को न भूल; अपने वृद्ध पिता के दोषों पर ध्यान न दे; बुढ़ापे में उनकी सब प्रकार से सहायता कर।

इस प्रकार वे सुख और शांति से इस मनुष्य शरीर को छोड़ेंगे। और जिस प्रकार की पितृभक्ति और प्रेम तू अपने पिता पर करेगा उसी प्रकार की पितृभक्ति और प्रेम तेरी सन्तान तेरे साथ करेगी।

चौथा प्रकरण

सहोदर भाई

हे सहोदर भाइयो तुम ! एक बाप की सन्तान हो; उसने बड़ी सावधानी से तुम्हारा संगोपन किया है। तुम लोगों का भरण पोषण भी एक ही माँ के दूध से हुआ। इसलिए तुम लोग प्रेम-रज्जु में एक दूसरे से बँधकर रहो, ताकि तुम्हारे पितृगृह में सुख और शांति का वास हो। और जब तुम एक दूसरे से अलग हो अपने प्रेम और एकता के बन्धन को न भूलो। परिवार वालों की सहायता करना अपना पहिला कर्तव्य समझो।

यदि तुम्हारा भाई विपत्ति में पड़ गया है तो उसकी सहायता करो, यदि तुम्हारी बहिन संकट में पड़ गई है तो उसकी भी मदद करो।

इस प्रकार तुम्हारे पिता की संपत्ति से घराने भर का लाभ होगा और उसकी श्रद्धा का भाव सदैव तुम सब में प्रेम की वृद्धि करता रहेगा।

पाँचवाँ खण्ड

ईश्वर की करनी

अथवा

मनुष्यों में दैविक अन्तर



पहला प्रकरण

चतुर और मूर्ख

बुद्धि भी परमात्मा की देन है। जिसको जितना उचित समझता है, उसको उतना ही उसकी योग्यतानुसार वह देता है।

जिसको ईश्वर ने बुद्धि दी है, जिसके हृदय में उसने ज्ञान का प्रकाश डाला है, उसको उचित है कि वह उसने मूर्खों को उपदेश करे और स्वयं अपने ज्ञान की वृद्धि के लिये भी विचार रूप में उसे अपने बड़ों के सामने रक्खे।

सच्चे ज्ञानी में अज्ञानी की अपेक्षा उद्दंडता कम होती है। चतुर मनुष्य के मन में बारम्बार शङ्कायें आती रहती हैं, जिनको परख कर वह अपने विचारों को अपने अनुकूल स्वरूप देता रहता है। परन्तु मूर्ख मनुष्य सदैव हठी होता है, उसके मन में किसी प्रकार की शंका नहीं आती; वह सब कुछ जानता है—हाँ अज्ञानी रहता है तो सिर्फ अपनी मूर्खता के विषय में।

पोली ऐंठ निन्दनीय है और अधिक बड़बड़ाना मूर्खता का लक्षण है। तथापि शान्तिपूर्वक मूर्खों का उद्धतपन सहन करना और उनकी मूर्खता पर सहानुभूति प्रगट करना बुद्धिमानी का काम है।

अभिमान में आकर फूल न जाओ और न अपनी प्रखर बुद्धि का घमंड करो; क्योंकि मनुष्य का ज्ञान बहुत ही संकुचित है।

चतुर मनुष्य को अपने दोष मालूम रहते हैं; अतएव वह नम्र होता है; और स्वयं भला बनने के लिये प्रयत्न करता रहता है।

परन्तु मूर्ख अपने मन-प्रवाह की हलकी कंकड़ियों को देखकर ही प्रसन्न होता रहता है। वह उनको निकाल २ कर मोती की तरह दिखलाता है और जब दूसरे लोग उसकी प्रशंसा कर देते हैं तो वह बहुत खुश होता है। निरुपयोगी बातों के ज्ञान पर वह बड़ा अभिमान मानता है पर वह यह नहीं सोचता कि न जाने मैं अपनी मूर्खता पर कहाँ लज्जित होऊँ।

यदि उसे बुद्धिमानी के रास्ते में लगा दीजिये तब भी वह मूर्खता के मार्ग में चलने लगता है, किन्तु इस परिश्रम का पुरस्कार उसे क्या मिलता है? निन्दा और निराशा।

परन्तु बुद्धिमान मनुष्य ज्ञानोपार्जन करता हुआ अपने को शिक्षित करता है; कलाकौशल की उन्नति करने में उसे बड़ा आनन्द मिलता है, और उससे समाज को लाभ पहुँचने के कारण उसका बड़ा मान होता है। सद्गुणों का प्राप्त करना ही वह श्रेष्ठ ज्ञान समझता है और सच्चा सुख किस प्रकार मिलता है इसी का अध्ययन वह जीवन पर्यन्त करता रहता है।

दूसरा प्रकरण

धनी और निर्धन

जिस पुरुष को ईश्वर ने संपत्ति और उसके उचित उपयोग करने की बुद्धि दी है उसको ईश्वर का प्यारा और कीर्तिमान समझना चाहिये।

अपनी संपत्ति देखकर वह बड़ा प्रसन्न होता है क्योंकि इसी के कारण वह दूसरों का उपकार कर सकता है। वह पीड़ितों की रक्षा करता है

और बलवानों को निर्बलों के साथ जुल्म नहीं करने देता। जो लोग दया के पात्र हैं उनको वह जानता है और उनकी आवश्यकताओं का विचार कर निःस्वार्थ भाव से बुद्धिमत्ता-पूर्वक वह उनकी सहायता करता है। वह गुणियों को उत्तेजित करता है और प्रत्येक उपयोगी विषय की उन्नति उदारता के साथ करता है।

वह बड़े २ व्यवसाय के काम प्रारम्भ करता है, जिससे उसके देश के मजदूरों को मजदूरी मिलती है, और देश धन-सम्पन्न होता है। वह नई २ युक्तियाँ सोच कर निकालता है जिससे कला कौशल की वृद्धि होती है। आवश्यकता से अधिक भोजन के पदार्थ वह अपने दीन पड़ोसियों के लिये समझता है और इसलिए उन्हें वह देता है।

ऐश्वर्य्य के कारण उसके मन की उदारता कम नहीं होती और इसलिए वह अपने द्रव्य को देख-देखकर प्रसन्न होता है। उसकी प्रसन्नता बिल्कुल निर्दोष होती है।

परन्तु धिक्कार है उस मनुष्य को जो विपुल धन संचित करके अपने पास रक्खे रहना पसन्द करता है, वह गरीब-गुरबों को चूसता रहता है और उनके श्रम और कष्ट का विचार नहीं करता।

अत्याचारों द्वारा अपनी उन्नति करने में उसे कुछ भी खेद नहीं होता और भाइयों का विनाश देखकर उसका दिल नहीं दहलता। अनाथों के आँसुओं को वह दूध की तरह पी जाता है और विधवाओं का क्रन्दन उसके कानों को कुछ भी कष्ट नहीं देता। धन के लोभ से उसका हृदय कठोर हो जाता है, इसलिये दूसरों के दुःख का उस पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता।

परन्तु इस पाप का पिशाच उसका पीछा नहीं छोड़ता। वह उसे कभी चैन नहीं लेने देता। दूसरों पर वह जो अत्याचार करता है उसकी

चिन्ता उसे सदैव सताये रहती है और पर-धनहरण का दुर्व्यसन उसे सदैव तङ्ग किये रहता है।

अफसोस जो पीड़ा उसके हृदय के भीतर ही भीतर होती है, उसके सामने दरिद्रता का दुःख कोई चीज नहीं।

गरीबों को आनन्द मनाना चाहिये, इसके कई कारण हैं:—उसको खुशामदी और खाऊ सदैव नहीं घेरे रहते, अतएव वह अपनी नमक रोटी सुख सन्तोष के साथ खा सकता है। बहुत से नौकर-चाकरों की हैरानी उसे नहीं रहती। और न याचक लोग उसे कष्ट देने को आते हैं। धनवानों के उत्तम भोजन चूँकि उसे नहीं मिलते; अतएव वह रोगों से भी बचा रहता है। उसे रूखा-सूखा अन्न और कुंए का पानी अच्छा लगता है। इसके सामने वह बड़े स्वादिष्ट खाद्य और पेय पदार्थों को तुच्छ समझता है।

परिश्रम करने के कारण उसका स्वास्थ्य अच्छा बना रहता है। और उसे वह गहरी नींद आती है जो सेज पर लेटनेवाले सुस्त धनियों को मुअस्सर तक नहीं होती।

वह बड़ी नम्रता के साथ अपनी इच्छाओं को सीमाबद्ध कर लेता है। और सम्पति तथा शान शौकत की अपेक्षा सन्तोष रूपी द्रव्य का सुख उसे अधिक अच्छा मालूम होता है।

इसलिये अमीरों को चाहिये कि वे धन से फूल न जायँ और न गरीब दरिद्र होने के कारण दुःख करें। परम पिता परमेश्वर का उद्देश्य दोनों को सुखी रखना ही है।



तीसरा प्रकरण

स्वामी और सेवक

ऐ मनुष्य ! पराधीनता के लिये बड़ बड़ न कर। समझ ले कि यह भी एक परमात्मा की योजना है। इससे अनेकों लाभ हैं। पराधीनता तुमको जीवन की चिन्ताओं से बचाये रहती है।

स्वामिभक्ति से सेवक की प्रतिष्ठा होती है; और आज्ञापालन ही उसका सर्वश्रेष्ठ गुण है। इसलिए धनियों के वाक् प्रहार को शांति से सह लो। और जब वह तुम्हें डाटें तो उत्तर न दो; तुम्हारी यह सहनशीलता स्वामी को नहीं भूल सकती। उसकी भलाई करने के लिए सदैव तैय्यार रहो। उसका काम परिश्रम के साथ करो। जिस बात के लिए वह तुम्हारा विश्वास करे उसमें विश्वासघात न करो। सेवक के समय और परिश्रम पर मालिक का अधिकार रहता है; उसके लिए वह वेतन देता है, इसलिए उसे धोखा न दो।

और तू जो अपने को मालिक कहता है, यदि चाहता है कि सेवक भी तुझ पर भक्ति रखे तो उसके साथ न्याय का वर्ताव कर। और यदि चाहता है कि वे तेरी आज्ञा का पालन करें तो सोच समझ कर हुक्म दे।

जोश आखिर मनुष्य में होता है। सख्ती नौकर के हृदय में भय भले ही उत्पन्न कर दे किन्तु प्रेम पैदा नहीं कर सकती, दयालु रहो किन्तु कभी-कभी डाट-डपट दिया करो। बुद्धिमानी से काम लो, किन्तु कभी-कभी जतला दो कि हम मालिक हैं और तू नौकर है। इस प्रकार तेरे उपालम्भ का सेवक के हृदय पर असर पड़ेगा और कर्तव्य पालन में उसे आनन्द आवेगा।

सेवक तेरी सेवा कृतज्ञतापूर्वक भक्ति के साथ करेगा, प्रसन्नता-

पूर्वक प्यार के साथ तेरी आज्ञा पालन करेगा परन्तु तू भी उसके बदले में उचित पुरस्कार देने से न चूक।

चौथा प्रकरण

शासक और शासित

ऐ परमेश्वर के प्यारे! तुझको मानवी प्राणियों ने अपने ऊपर हुकूमत करने के लिए राजसिंहासन पर बैठाया है। इसलिए अपने पद के ऐश्वर्य्य की अपेक्षा तुझे इतना बड़ा गौरव देने वाले उन लोगों के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अधिक विचार करना चाहिये।

अमूल्य वस्त्रों से सुशोभित करके तू राज्यसिंहासन पर बैठाया गया है; तेरे सर पर राजमुकुट रक्खा गया है, राजदण्ड तेरे हाथ में दिया गया है; ये राज्य-चिन्ह क्या तेरे व्यक्तिगत लाभ के लिए दिये हैं! नहीं। ये तुझे प्रजा-हित करने के लिए सौंपे गये हैं। प्रजा के कल्याण में ही राजा का गौरव है; क्योंकि उसका अधिकार और राज्य-पद प्रजा की इच्छा ही पर अवलम्बित है।

अपने पद के ऐश्वर्य से किसी उत्तम बादशाह का हृदय उदार होता है। वह बड़े बधान बांधता है और नये नये काम अपनी शक्ति के अनुसार खोलता है। वह अपने राज्य के चतुर मनुष्यों की सभा करता है; उनसे सलाह मशविरा करता है और उनकी बातों को मानता है। वह अपने चातुर्य्य से लोगों को देखते ही उनकी योग्यता समझ लेता है; और उसी के अनुसार उन्हें काम देता है। उनके न्यायाधीश न्यायी होते हैं, उसके मंत्री चतुर होते हैं और उसके निकटवर्ती सेउ धोखा नहीं दे सकते।

उसकी छत्रछाया में कला-कौशल और सब प्रकार के विज्ञान की उन्नति होती है। विद्वान् और चतुर लोगों का सङ्ग करना उसे अच्छा मालूम होता है, जिससे उसकी महत्वाकांक्षा की वृद्धि होती है और उन सब के परिश्रम से राज्य का गौरव और अधिक बढ़ जाता है।

व्यापार वृद्धि करने वाले सौदागरों के उत्साह को, परिश्रम करके भूमि को उपजाऊ बनाने वाले किसानों की चतुरता को, कारीगरों की कारीगरी को और विद्वानों की योग्यता को मान देकर वह सबों को उदारता के साथ पुरस्कार देता है।

वह नई बस्तियाँ बसाता है, मजबूत जहाज बनवाता है; आराम के लिए नदियों से नहरें निकलवाता है, और सुभीते के लिए बन्दरगाह बनवाता है। परिणाम यह होता है कि उसकी प्रजा वैभवशाली और राज्य सुदृढ़ हो जाता है।

वह राज्यनियम न्याय और चातुर्य से बनाता है, उसकी प्रजा आनन्द से अपने परिश्रम का फल भोगती है। राज्यनियमों से उनके मार्ग में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ने पाती; उलटे उनके अनुसार चलने से ही उन्हें सुख मिलता है।

वह दया को साथ लेता हुआ न्याय करता है; परन्तु अपराधियों को निष्पक्षपात और कड़ाई के साथ दण्ड देता है। अपनी प्रजा की शिकायतों को सुनने के लिये वह सदैव तय्यार रहता है और अत्याचारियों के अत्याचार से उन्हें बचाता है। उनकी प्रजा इसीलिये पितृवत मान और प्रेम की दृष्टि से उसे देखती है और अपने सब सुखों का उसे रक्षक समझती है। लोगों का प्रेम उसके हृदय में प्रजा-वात्सल्य उत्पन्न करता है और फिर वह उनके सुख की रक्षा करने का बराबर प्रयत्न करता रहता है। उनके दिलों में उसके प्रति कोई शिकायत नहीं रह जाती और शत्रु फिर उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

उसकी प्रजा उसके सब कामों में राजभक्ति और दृढ़ता से सहायता करती है। वह लोहे की दीवाल की तरह उसकी रक्षा करती है। शत्रु की सेना उसके सामने इस प्रकर नहीं ठहर सकती जिस प्रकार हवा के सामने भूसा।

ऐसे राजा की प्रजा सुरक्षित और सुखी रहती है; और यश और सामर्थ्य उसके सिंहासन के चारों ओर हाथ जोड़े खड़े रहते हैं।



छठवां खंड

सामाजिक कर्तव्य

पहला प्रकरण

परहित बुद्धि

जब तू अपनी आवश्यकताओं और कमी पर विचार करने बैठे तो ऐ मनुष्य प्राणी ! उस परमात्मा का उपकार न भूल, जिसने तुझे बुद्धि और कथन शक्ति दी है और जिसने पारस्परिक सहायता और अहसान करने के लिये तुझे समाज में स्थान दिया है।

अन्न वस्त्र घर, आपत्तियों से बचाव, जीवन का सुख और चैन ये सब तुझे दूसरों की सहायता से मिले हैं। समाज के बिना अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकते थे। इसलिये तेरा कर्तव्य है कि जिस प्रकार तू चाहता है कि दूसरे हमारे मित्र बने रहें उसी प्रकार तू भी दूसरों का मित्र बना रह।

जिस प्रकार गुलाब से मधुर सुगन्धि आप से आप निकलती है उसी प्रकार परोपकारी मनुष्य का हृदय अच्छे काम की ओर आप से आप लगा रहता है। कहने की जरूरत नहीं पड़ती। वह अपने हृदय में सुख और शांति का अनुभव करता है और पड़ोसियों की बढ़ती देखकर खुश होता है। वह किसी की निन्दा नहीं सुनता और दूसरों की भूलों और दुर्गुणों को देखकर उसे दुःख होता है।

उसकी इच्छा सदा दूसरों की भलाई करने की ओर रहती है और उसके लिये वह अवसर ढूँढता फिरता है। दूसरों का कष्ट दूर करके वह शांति उपलब्ध करता है।

मन विशाल होने के कारण वह परमेश्वर से यही मनाता है कि सब को सुख मिले और हृदय की उदारता के कारण उसे सुलभ करने का प्रयत्न करता है।

दूसरा प्रकरण

न्याय

समाज की शान्ति न्याय पर अवलम्बित है और मनुष्यों का सुख अपनी संपत्ति के उपयोग करने पर निर्भर है। इसलिए अपनी वासनाओं को मर्यादा के भीतर रक्खो और न्याय से उनकी पूर्ति करो।

अपने पड़ोसी की सम्पति पर दाँत न लगाओ। जितनी उसकी जायदाद है, उसे सुरक्षित रहने दो। लालच अथवा क्रोध के वशीभूत होकर उसकी जान लेने पर उतारू न हो जाओ। उसके आचरण पर धब्बा न लगाओ और न उनके विरुद्ध झूँठी गवाही ही दो। उसकी स्त्री के साथ भोग करने की कोशिश न करो और उनके सेवकों को रुपया-पैसा देकर न इस बात की चेष्टा करो कि वे अपने मालिक को छोड़ दें। इससे उसके दिल को बड़ा दुःख होगा जिसको तुम निवारण नहीं कर सकते।

दूसरे के साथ निष्पक्षपात और न्याय का वर्ताव करो और उनके साथ वैसा ही वर्ताव करो जैसा कि तुम अपने साथ चाहते हो।

जो तुम्हारा विश्वास करे उसका साथ दो; जो तुम पर निर्भर रहे उसे धोखा न दो। स्मरण रहे, परमात्मा की दृष्टि में चोरी करना इतना बड़ा पाप नहीं है जितना बड़ा पाप विश्वासघात करना है।

दीन दुःखियों पर अत्याचार न करो; और न मजदूरों की मजदूरी देने में टाल-मटोल करो। नफे के साथ अपनी वस्तुएँ बेचते समय अंतःकरण की आवाज सुनकर थोड़े ही लाभ पर संतुष्ट रहो। ग्राहकों को भोला भाला समझकर उनको मूड़ो नहीं।

यदि तुमने किसी से ऋण लिया है तो उसे चुका दो। महाजन ने तुम्हें तुम्हारी साख पर रुपये उधार दिये थे। रुपया न चुकाना नीचता और अन्याय है।

सारांश यह है कि प्रत्येक मनुष्य समाज का एक अंश है। उसे अपने हृदय की छान बीन करके अपनी स्मरण-शक्ति से काम लेना चाहिये। और यदि उसे मालूम हो कि मैंने उपर्युक्त बातों में से किसी बात को उल्लंघन किया है तो उसके लिये लज्जित और दुखित होकर भविष्य में उनके सुधारने का यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिये।

तीसरा प्रकरण

परोपकारी

जिसने अपने हृदय में परोपकार का बीज आरोपण किया है उस पुरुष को धन्य है, क्योंकि परोपकार से धर्म और प्रेम उत्पन्न होते हैं।

परोपकारी मनुष्य के हृदय-सरोवर से भलाई की नदियाँ निकल कर मनुष्य मात्र का उपकार करती हैं। संकट के समय वह गरीबों की सहायता करता है और समाज का उत्कर्ष करने में उसे आनन्द मिलता है।

वह अपने पड़ोसियों की निन्दा नहीं करता, डाह और मत्सरता की बातों पर विश्वास नहीं करता और किसी की चुगली नहीं खाता। वह दूसरों के अपराधों को क्षमा करके उन्हें भूल जाता है। बदला और द्वेष को उसके हृदय में जगह नहीं मिलती। बुराई के बदले में वह बुराई नहीं करता। वह अपने शत्रुओं से घृणा नहीं करता बल्कि प्रेम-भाव से उनके अपराधों को भूल जाता है।

दूसरों के दुःख और चिन्ताओं को देख कर परोपकारी मनुष्य का हृदय पसीज उठता है। वह उनकी आपत्तियों को दूर करने का प्रयत्न करता है और यदि सफलता हो गई तो उससे जो आनन्द मिलता है उसे वह अपने लिये पुरस्कार समझता है।

वह क्रोधी मनुष्य के क्रोध को शांत करके झगड़े को तै कर देता है और इस प्रकार आगामी वैर-भाव और लड़ाई-झगड़े को रोकता है।

वह अपने पड़ोसियों में शांति और परस्पर स्नेह भाव की वृद्धि करता है और इसी कारण लोग उसकी प्रशंसा करके उसे आशीर्वाद देते हैं।

चौथा प्रकरण

कृतज्ञता

जिस प्रकार रस वृक्ष की शाखाओं से फैल कर फिर उसी जड़ में लौट जाता है, जहाँ से वह आया था; अथवा जिस प्रकार नदी का पानी, जिस समुद्र से नदी को मिलता है उसी समुद्र में फिर चला जाता है उसी प्रकार कृतज्ञ मनुष्य का हृदय अपने उपकारकर्त्ता की ओर जाता रहता है। उसके उपकार के बदले उपकार करने ही में उसे आनन्द मिलता है।

वह दूसरों के उपकार को प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार करता है और अपने उपकर्त्ता को सत्कार और प्रेम की दृष्टि से देखता है।

और यदि उस उपकार का बदला चुकाना उसकी शक्ति के बाहर हुआ तो भी उसको सारे जीवन वह कभी नहीं भूलता।

कृतज्ञ पुरुष आकाश के बादल की नाईं है जो पानी बरसा कर पृथ्वी के फल, फूल, तरकारियों की वृद्धि करता है। प्रत्युत कृतघ्नी का हृदय बालू की मरुभूमि की तरह है। वह बरसे हुए पानी को सोख कर अपने उदर में रख छोड़ती है। कुछ पैदा करना नहीं चाहती।

अपने कल्याणकर्त्ता से डाह न करो और न उसके किये हुए उपकार को छिपाने का प्रयत्न करो। क्योंकि यद्यपि उपकारबद्ध होने की अपेक्षा उपकार करना अच्छा है, यद्यपि उपकार से हमारी प्रशंसा होती है तथापि कृतज्ञ पुरुष की नम्रता हृदय को द्रवीभूत करती है और ईश्वर और मनुष्य दोनों को भली मालूम होती है।

परन्तु घमंडी मनुष्य के उपकार को ग्रहण न करो और न स्वार्थी और लोभी मनुष्यों के साथ उपकार करो। क्योंकि घमण्डी का

करता है। वह दुःख में हँसता है, आनन्द में रोता है और उसकी बातें स्पष्ट नहीं होतीं। वह छछून्दर की तरह रात्रि में काम करता है; किसी को मालूम नहीं होता और सोचता है कि मैं सुरक्षित हूँ, किन्तु उसका भेद खुल जाता है और उसे अपना मुँह काला करना पड़ता है। इस प्रकार उसे अपने दिन दुःख के साथ बिताने पड़ते हैं।

उसके मुंह की बातें उसके दिल की बातों के बिलकुल विरुद्ध रहती हैं। देखने में तो बेचारा बड़ा सीधा, सादा और सदाचारी बना रहता है किन्तु हमेशा दूसरों का गला काटने के लिये तैयार रहता है।

हा ! कैसी मूर्खता है। जितना प्रयत्न वह दोषों को छिपाने में करता है, उतना उनके हटाने में करे तो उसके सब दोष दूर हो सकते हैं। ऐ ढोंगी मनुष्य, अपने को जितने दिन चाहे उतने दिन छिपा ले, परन्तु समय आवेगा जब तेरा सच्चा स्वरूप खुल जायगा और बुद्धिमान लोग तुझे देखकर हँसेंगे और तेरा तिरस्कार करेंगे।

तेरे दिल की बातें वह जानता रहता है और तेरे इरादे उसे पहिले ही से मालूम रहते हैं। भविष्य की बातें उससे छिपी नहीं हैं और भाग्य में लिखी हुई बातें उसे मालूम रहती हैं।

उसके सब काम विचित्र हैं। उसके मंत्र अचिन्त्य हैं। उसका ज्ञान कल्पनातीत है। इसलिए उसके ज्ञान का सत्कार करो और उसके सर्वश्रेष्ठ शासन को नम्रता के साथ सिर झुकाओ।

परमेश्वर दयालु और दानशील है। उसने दया और वात्सल्यभाव से इस संसार को उत्पन्न किया है। उसकी सुजनता उसके प्रत्येक काम में दिखलाई पड़ती है। वह सम्पति का भंडार और सिद्धि का केन्द्र है।

सृष्टिमात्र उसकी सुजनता प्रकट करती है। उसके सुख उसका गुणानुवाद गाते हैं। वह सृष्टि को सौन्दर्य से विभूषित करता है; अन्न देकर उसका पोषण करता है और पीढ़ी दर पीढ़ी तक आनन्द से उसे कायम रखता है।

जब आँख उठाकर हम आकाश की ओर देखते हैं तब उसका तेज मालूम होता, जब हम पृथ्वी की ओर देखते हैं पृथ्वी सुजनता से भरी दिखलाई पड़ती है। पर्वत और घाटियाँ उसकी स्तुति करती हैं और खेत, नदी और जङ्गल उसकी प्रशंसा की प्रतिध्वनि करते हैं।

परन्तु ऐ मनुष्य ! तुझे उसने अपना एक मुख्य कृपापात्र बना रक्खा है और सब प्राणियों की अपेक्षा श्रेष्ठ स्थान दिया है। उसने तुझे अपना, पद कायम रखने के लिये बुद्धि, समाज में उन्नति करने के लिये वाणी और उसकी पूर्णता को मनन करने के लिये विचार-शक्ति दी है।

उसने जीवन के नियम इतने अच्छे बनाये हैं और तेरी प्रकृति के अनुसार उसने ऐसे कर्तव्य निश्चित किये हैं कि उन नियमों के पालन करने से ही तुझे सच्चा सुख मिल सकता है। इसलिये अनन्यभक्ति के साथ उसके गुण गावो, जिससे तुम्हारा हृदय उसकी कृतज्ञता से पसीजे और आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगे। अपनी वाणी से उसकी स्तुति

करो और ऐसे ऐसे उत्तम काम करो जिससे यह मालूम पड़े कि तुम उसके नियमों का पालन कर रहे हो।

ईश्वर न्यायी और सत्यप्रिय है। इसलिये संसार का न्याय वह सचाई और निष्पक्षपात के साथ करता है। जब उसने अपने नियम सदुद्देश्य और दया के साथ बनाये हैं तो उनके उल्लङ्घन करने वालों को क्या वह दण्ड नहीं देगा?

अरे भाई, यदि तुम्हें जल्दी दण्ड न मिले तो यह न सोचो कि ईश्वर का हाथ निर्बल हो गया है और न व्यर्थ की पोली-पोली आशा करके अपने दिल को यह कहकर बहलाओ कि वह हमारे कामों को देख ही नहीं रहा है।

उसकी दृष्टि प्रत्येक अन्तःकरण की बातों पर पड़ती है और वह उन्हें हमेशा याद रखता है। वह न तो मनुष्यों की और न उसकी पदवियों की ही कुछ परवाह करता है।

इस नश्वर पंचभूत शरीर से जब आत्मा निकल बाहर होगी तो ऊँच और नीच, धनवान और निर्धन, बुद्धिमान और मूर्ख अपने अपने कर्म के अनुसार ईश्वर के सामने यथायोग्य फल पावेंगे। उसी समय दुर्जन काँपेंगे और भयभीत होंगे, किंतु सज्जन उसके न्याय से प्रसन्न होंगे।

इसलिये सारे जीवन परमेश्वर से डरते रहो और जो मार्ग उसने तुम्हारे सामने खोल कर रख दिया है उसी पर होकर चलो। विवेक की बातों पर ध्यान दो; संयम से अपनी इन्द्रियों को अपने वश में करो, न्याय को अपना पथ-प्रदर्शक बनाओ, उदारता को अपने हृदय में स्थान दो, और धन्यवाद पूर्वक ईश्वर की भक्ति करो। ऐसा करने से तुम्हें इस लोक और परलोक दोनों में सुख मिलेगा।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

उत्तरार्ध

पहला खंड

सामान्यतः मनुष्य-प्राणी के विषय में

पहला प्रकरण

मानवी शरीर और उसकी बनावट

मनुष्य-प्राणी निर्बल और अज्ञान है, इसलिये उसे सदैव नम्र रहना चाहिये। जिसको ज्ञान कह कर पुकारता है और जिसके लिये वह घमण्ड करता है, सच्चा ज्ञान नहीं है। यदि उसे सच्चे ज्ञान के जानने की इच्छा है, यदि वह जानना चाहता है कि ईश्वरीय शक्ति क्या है तो उसे अपने शरीर की बनावट का पहिले अवलोकन करना चाहिए।

मनुष्य की उत्पत्ति अद्भुत और भयजनक है, इसलिए अपने उत्पन्नकर्त्ता से भयभीत होता हुआ उसे उसकी प्रशंसा करनी चाहिए और उस पर दृढ़ विश्वास करके आनन्द-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए।

हमें ईश्वर ने अन्य प्राणियों की अपेक्षा श्रेष्ठ क्यों बनाया है ! इसलिये कि हम उसके कामों को देखकर उनसे शिक्षा ग्रहण कर सकें। ऐ मनुष्य प्राणी, भला बतला तो सही, उसकी और उसके कामों की प्रशंसा हमें करना उचित है अथवा नहीं ?

मनुष्य प्राणियों ही में आन्तरिक चैतन्यता क्यों है ! वह उसे कहाँ से और क्योंकर मिली। विचार करना माँस का धर्म नहीं है, अथवा तर्क करना कुछ हड्डियों का काम नहीं। सिंह नहीं

जानता कि कीटक मुझे खा जायँगे और बैल को ज्ञान नहीं कि मैं बलिदान के लिए खिला-पिला कर मोटा किया जा रहा हूँ।

अन्य प्राणियों की अपेक्षा तुम में एक नवीन शक्ति है। यह शक्ति इन्द्रियगोचर ज्ञान की अपेक्षा एक विशेष ज्ञान का परिचय तुम्हारे जड़ शरीर को करा देती है। आइये, विचारें तो सही कि वह कौन सी ऐसी शक्ति है।

उसके निकल जाने पर भी वह शरीर पूर्णावस्था में बना रहता है। इससे जान पड़ता है कि वह शरीर का कोई भाग नहीं है; किन्तु उससे अलग है। वह निराकार और सनातन है। वह कर्म करने में स्वतन्त्र है। इसलिये यह बात सिद्ध है कि वह अपने कर्म के लिए उत्तरदायी है।

गधा अपने दांतों से घास-पात खाता है; किन्तु अन्न का प्रयोग नहीं जानता। मगर की रीढ़ की हड्डी सीधी होती है; परन्तु वह मनुष्य की तरह सीधा नहीं खड़ा हो सकता।

ईश्वर ने जिस प्रकार इन्हें बनाया है उसी प्रकार उसने मनुष्य को भी बनाया है, परन्तु वह सबके पीछे पैदा किया गया है। अन्य प्राणियों पर उसे श्रेष्ठत्व और स्वामित्व दिया गया है; और उसे वेदों का सच्चा ज्ञान भी करा दिया गया है।

इसलिए मनुष्य प्राणी ईश्वर की सृष्टि में एक अभिमान की वस्तु है। यह बीच में रहकर प्रकृति और पुरुष की एकता का अनुभव करता है। यह ईश्वर का एक अंश है। उसे अपना गौरव ध्यान में रखकर बुराई की ओर प्रवृत्त नहीं होना चाहिए।

दूसरा प्रकरण

इन्द्रियों का उपयोग

हमारा शरीर और मस्तिष्क अन्य जीवधारियों की अपेक्षा श्रेष्ठ

है—ऐसी अपनी बड़ाई न हाँको। घर के दीवालों की अपेक्षा घर का मालिक ही अधिक आदरणीय होता है।

बीज बोने के पहले ही जमीन तैयार कर लेनी चाहिये। घड़े बनाने के पहिले ही कुम्हार को अपनी मिट्टी तैयार कर लेनी चाहिये।

जिस प्रकार ईश्वर समुद्र को हुक्म देता है कि तेरी लहरें इस ओर बहें दूसरी ओर नहीं, वे इतनी ऊँची हों, इससे अधिक नहीं; वे इतना शोर करें, इससे अधिक शोर न करें। उसी तरह ऐ मनुष्य! तू भी अपने आत्मबल द्वारा इस शरीर से उसी प्रकार काम ले जिसमें सब इन्द्रियाँ तेरे वश मे रहें।

यह शरीर पृथ्वी है; हड्डियाँ उसको सँभाले रहने वाले खम्भे हैं। जीवात्मा राजा है। इन्द्रियाँ प्रजा है। जिस प्रकार राजा को चाहिये कि वह अपनी प्रजा को राजविद्रोह करने से रोके, उसी प्रकार मनुष्य का धर्म है कि वह प्रजा रूपी इन्द्रियों को अपने वश में रक्खे।

जिस प्रकार समुद्र का पानी बादल द्वारा बरसकर नदियों में जाता है और नदियों से फिर वही पानी लौट कर समुद्र में आ जाता है, उसी प्रकार मनुष्य का चैतन्य उसके हृदय से निकल कर बाहर के अवयवों में जाता है और वहाँ से घूम-घाम कर फिर अपने स्थान में लौट जाता है। इन दोनों का क्रम बराबर जारी रहता है और इस प्रकार दोनों परमेश्वर के नियम का पालन करते हैं।

क्या तेरी नाक सुगन्ध लेने का द्वार नहीं है? क्या तेरा मुँह पेट के भीतर अच्छे २ भोजन के पदार्थ भरने का द्वार नहीं है? अवश्य है, परन्तु याद रख, बहुत देर के पश्चात् सुगन्ध से मन ऊब उठता है; और भोजन के पदार्थ फीके मालूम होने लगते हैं।

क्या तेरी आँखें तेरे शरीर की चौकसी करने वाले पहरुये नहीं हैं? तथापि कितने बार सत्य-असत्य के निर्णय करने में चूक जाती हैं।

इसलिए मन को अपने वश में रक्खो; अपनी बुद्धि को अपने हित

की ओर लगाने का अभ्यास करो। (नेत्रादि) उसके मन्त्री हमेशा आप से आप सत्य की ओर लगे रहेंगे।

अहा तेरा हाथ क्या एक अदभुत वस्तु नहीं है! क्या उसका सा सारी सृष्टि में कोई है! मालूम है, यह तुझे क्यों दिया गया! वास्तव में भाई- बन्धुओं की सहायता करने के लिए।

परमेश्वर ने सब जीवधारियों में तुम्हीं को लज्जायुक्त क्यों बनाया! जब तुम्हें लज्जा मालूम होती है, वह उसी समय चेहरे से टपकने लगती है। इसलिये कोई लज्जा-जनक कार्य न करो। भय और उद्वेग करके तुम अपने चेहरे की कान्ति को क्यों नष्ट कर रहे हो! पाप कर्म करना छोड़ दो, फिर तो तुम स्वयं कहोगे कि भय करना मेरी प्रकृति के विरुद्ध और उद्वेग करना नामर्दी है।

निद्रा में दिखलाई देने वाली आकृतियाँ मनुष्य प्राणियों से ही बोलती हैं, इसलिये उनकी अवहेलना न करो, वे ईश्वर प्रेरित हैं।

ऐ मनुष्य! केवल तुझी को बोलने की शक्ति दी गई है। अपने विशिष्ट अधिकारों के लिये आश्चर्य कर देने वाले की यथोचित प्रशंसा कर; और अपने लड़कों को विवेकी और ईश्वरभक्तिपरायण बना।

—:o:—

तीसरा प्रकरण

मनुष्य की आत्मा, उसकी उत्पत्ति और धर्म

यदि हम शरीर की ओर देखें तो मालूम होता है कि आरोग्यता, बल और सौन्दर्य ईश्वरीय देन हैं। इन सबों में आरोग्यता का स्थान सर्वश्रेष्ट है। जो सम्बन्ध सत्य और आत्मा का है वही सम्बन्ध आरोग्यता और शरीर का है।

ऐ मनुष्य! इस बात का ज्ञान कि, तेरे आत्मा है, अन्य सब ज्ञानों की अपेक्षा अधिक निश्चित, और सब सत्यों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट

है। इसलिये नम्र बनो, परमात्मा को धन्यवाद दो, किन्तु इसको पूर्ण-रूप से जानने का प्रयत्न न करो, क्योंकि अवर्ण्य होने के कारण उसका पूर्ण ज्ञान असम्भव है।

विचारशक्ति, बुद्धि तर्क पद्धति और मनः संकल्प, इनमें से कोई भी आत्मा नहीं है। ये तो उसके काम हैं—मूलतत्व नहीं हैं।

उसकी ही सहायता से उसकी तलाश करो, उसके ही गुणों से पहिचानो। सिर के बालों और आकाशस्थ तारों की अपेक्षा उसके गुणों की संख्या अधिक है।

अरब के लोगों की यह धारणा है कि एक आत्मा के खण्ड-खण्ड करके सब को बाँट दिये गये हैं, और मिश्र देश के लोगों का ख्याल है कि प्रत्येक मनुष्य की बहुत सी आत्मायें हैं। इन दोनों में से कोई मान्य नहीं है। तुम्हारी धारणा यह होनी चाहिये कि, हृदय की तरह तुम्हारी आत्मा भी एक ही है।

क्या सूरज गीली मिट्टी को कड़ी नहीं करता है? क्या वह मोम को पिघलाता नहीं? जिस प्रकार सूरज एक साथ दो काम कर सकता है उसी प्रकार आत्मा भी दो विरुद्ध बातें एक साथ कर सकती है।

जिस प्रकार बादल से घिर जाने पर भी चन्द्रमा अपना धर्म नहीं छोड़ता, अर्थात् प्रकाश करता रहता है, उसी प्रकार मूर्ख के हृदय में भी आत्मा अपना धर्म नहीं छोड़ती—निर्दोष और पूर्ण रहती है।

वह अमर है, स्थायी है, और सब प्राणियों में एक ही सी है। आरोग्यता से उनकी सुन्दरता बढ़ जाती है; और सतत अभ्यास से वह उत्साहान्वित होती है।

वह तुम्हारे पीछे भी जीवित रहेगी; परन्तु ऐसा ख्याल न करो कि उसका जन्म तुम्हारे पहिले हुआ था; वह तेरे शरीर के साथ बनाई गई थी। उसकी उत्पत्ति तेरे मांस के साथ हुई थी।

हम सर्वगुणसम्पन्न हैं, इसलिए न्याय से; और हम दुर्गुणी हैं; इसलिये दया से वह मिलने वाली नहीं। न्याय और दया हम पर ही आश्रित हैं; और उनके उत्तरदायी हमी हैं।

मृत्यु किए हुए कुकर्म्मों से बचा लेगी; ऐसा ख्याल न करो और न यही समझो कि चरित्र भ्रष्ट होने पर हमारी जाँच परताल न की जायगी। ईश्वर की सत्ता मर्यादा नहीं है, उसकी लीला अपरम्पार है; उसको कुछ भी अशक्य नहीं है।

रात कितनी गई, मुर्गा इस बात को जानता है। बाँग देकर कहता है, उठो सबेरा हो गया। कुत्ता अपने मालिक के पैरों की आहट पहिचानता है। पैर में घाव हो जाने पर बकरा उसे आराम करने वाली बनस्पति की ओर दौड़ जाता है। फिर भी यह सब जब मर जाते हैं तो इनकी आत्मा पंचतत्व में मिल जाती है; केवल मनुष्य की आत्मा जीवित रहती है।

पक्षियों की इन्द्रियाँ हमारी इन्द्रियों से अधिक तीक्ष्ण हैं, इसलिए उनकी ईर्षा न करो। खूबी किसी वस्तु को रखने में नहीं किन्तु उसके उचित उपयोग करने में है।

यदि तेरे कान बारहसिंहे के कान की तरह होते, आँख गिद्ध की तरह तीक्ष्ण होती, घ्राणेन्द्रिय कुत्ते की तरह होती, स्वादेन्द्रिय बन्दर की तरह होती अथवा तेरी कल्पनायें कछुये की सदृश होतीं तो भी क्या, बिना बुद्धि के तुझको इन सब से कोई लाभ हुआ होता ! उपर्युक्त सभी प्राणी मरणशील ही हैं फिर भी क्या इनमें से किसी के विचार प्रकट करने की शक्ति है ! क्या तुमने उन्हें कभी करते सुना है कि इनने ऐसा किया।

जिसने हमको आत्मा दिया है उसी की यह प्रतिमा है। उसपर तुम पूर्ण विचार नहीं कर सकते। उसकी स्तुति करना तुम्हारी शक्ति के बाहर है। इसलिए सदा सर्वदा उसके बड़प्पन की याद रक्खो। कितना बड़ा बुद्धि-वैभव तुम्हारे सुपुर्द किया गया है, इस बात को न भूलो। जितने

भलाई होती है उससे बुराई भी होती है, इसलिए उसे सन्मार्ग में लाने का प्रयत्न करो।

भीड़ में तुम उसे खो नहीं सकते हो और न हृदय-कपाट में ही उसे रोक रख सकते हो। लाभ करने ही में उसे आनन्द आता है, और इससे तुम उसे पराङ्मुख नहीं कर सकते।

आत्मा कभी खाली नहीं बैठी रहती। उसके प्रयत्न विश्व-व्यापक हैं, उसकी चपलता दबाई नहीं जा सकती। पृथ्वी के सिरे में कोई वस्तु रख दीजिये, उसको वह प्राप्त कर लेगी। आसमान की चोटी में कोई वस्तु रख दीजिये, वहाँ भी उसकी दृष्टि पहुँच जायगी। प्रत्येक नई वस्तु की छानबीन करने ही में उसे आनन्द मिलता है। जिस प्रकार रेगिस्तान में मनुष्य पानी की खोज में भटकता फिरता है।

आत्मा बड़ी चंचल है, इसलिये उसकी चौकसी करो; वह अनियंत्रित है, इसलिये उसे अपने दाव में रक्खो; वह उपद्रवी है इसलिये उसे अपने वश में किये रहो, वह पानी से भी पतली, मोम से भी कोमल और वायु से भी अधिक चंचल है, तब भला बतलाओ सही। क्या कोई वस्तु उसे बाँध सकती है?

पागल मनुष्य के हाथ तलवार की नाईं विवेकहीन पुरुषों में आत्मा समझनी चाहिये।

सत्य ही आत्मा का उद्देश्य है। अनुभव और बुद्धि उस सत्यता को ढूँढ़ने के साधन हैं। ये साधन अनिश्चित और भ्रमजनक हैं? उनके द्वारा वह सत्य किस प्रकार प्राप्त कर सकती है।

बहुमत होना कुछ सत्य का प्रमाण नहीं है। क्योंकि जनता सामान्यतः अज्ञ हुआ करती है।

आत्मा की परीक्षा. अपने उत्पन्नकर्ता का ज्ञान और उसकी आराधना ही वस्तुतः सच्चे ज्ञान मिलने के साधन हैं। इनसे बढ़कर जानने के और क्या साधन हो सकते हैं।

चौथा प्रकरण

मानवी जीवन और उसका उपयोग

जिस प्रकार प्रभात काल लवा पक्षी को, सायंकाल की धूसरता उल्लू को, शहद मधुमक्खी को और मृत शरीर गिद्ध को प्रफुल्लित करते हैं उसी प्रकार जीवन मनुष्य के लिये प्यारा है। मानवी जीवन चाहे उज्जवल भले ही हो किन्तु वह आँखों को चकाचौंध में नहीं डालता, वह चाहे निस्तेज भले ही हो फिर भी निराशा उत्पन्न नहीं करता, वह चाहे जितना मधुर हो, फिर भी उससे जी नहीं ऊबता। चाहे सड़कर वह बिगड़ गया हो फिर भी छोड़ा नहीं जाता। इतना होने पर भी उसका सच्चा मूल्य कौन जान सकता है।

बुद्धिमत्ता इसी में है, जब जीवन की कदर उतनी ही की जाय जितनी योग्यता है। मूर्खों की तरह न तो यह समझो कि जीवन की अपेक्षा दूसरी कोई वस्तु अधिक मूल्यवान नहीं है, और न ढोंगी बुद्धिमानों की तरह यह ही ख्याल करो कि जीवन निःसार है। केवल अपने स्वार्थ ही के लिये उस पर आसक्त न होओ, बल्कि उससे होने वाले दूसरों के हित का ध्यान रक्खो।

सोना देने पर भी जीवन नहीं खरीदा जा सकता और न ढेर के ढेर हीरे खर्च करने पर गया हुआ समय फिर वापस मिल सकता है। इसलिये प्रत्येक क्षण को सद्गुण संपादन करने में ही लगाना बुद्धिमानी का काम है।

हमारा जन्म न हुआ होता अथवा जन्मते ही हम मर गये होते तो अच्छा होता—ऐसा न कहो और न अपने उत्पन्नकर्ता से यह पूछो कि "यदि हम पैदा न होते तो तू बुराई किसके लिये बनाता !" ऐसे ऐसे प्रश्न करना भूल का काम है, क्योंकि भलाई बुराई तुम्हारे हाथ में है और भलाई न करने का नाम बुराई है।

यदि मछली को मालूम हो जाय कि चारे के नीचे कँटिया है तो क्या वह उसे निगल जायगी? यदि सिंह जान ले कि यह जाल मेरे फँसाने के लिये बिछाया गया है तो क्या वह उसमें घुस जायगा? उसी प्रकार यदि यह बात मनुष्य को विदित हो जाय कि जीवात्मा भी शरीर के साथ नष्ट हो जायगा तो क्या वह कभी जीने की इच्छा करेगा?

जिस प्रकार पक्षी एकाएक पिंजड़े में फँस जाने पर पटक-पटक कर अपने शरीर की दुर्गति नहीं कर डालता, उसी में पड़ा पड़ा अपना दिन व्यतीत करता है, उसी प्रकार जिस स्थिति में हो उससे भागने का प्रयत्न न करो, उसी में सन्तोष रक्खो, समझ लो कि हमारे भाग्य में यही बदा था।

यद्यपि तुम्हारी स्थिति के मार्ग काँटेदार हैं, किन्तु वे दुःखदायी नहीं हैं। उन सबों को अपनी प्रकृति के अनुकूल बनाओ। जहाँ किंचित् भी बुराई देख पड़े, समझ लो कि वहाँ बड़ी सावधानी की आवश्यकता है

जब तक तुम पुआल के बिछौने पर लेटे हो तब तक तुम्हें बड़ी गहरी नींद आवेगी, किन्तु जहाँ गुलाब के फूलों का बिछौना सोने को मिला तहाँ काँटों से बचने की चौकसी करनी पड़ी।

गर्हित जीवन से यशस्वी मृत्यु अच्छी है। इसलिए जितने दिन तुम यश के साथ जीवित रह सकते हो, उतने ही दिन जीवित रहने का प्रयत्न करो। हाँ, यदि तुम्हारा जीवन लोगों को तुम्हारी मृत्यु से अधिक उपयोगी जान पड़े तो उसकी अधिक रक्षा करना भी तुम्हारा कर्तव्य है।

मूर्ख मनुष्य कहते हैं कि जीवन अल्प है, किन्तु तुम ऐसा न कहो; क्योंकि अल्प जीवन के साथ चिन्तायें भी तो अल्प ही रहती हैं।

जीवन का निरुपयोगी भाग निकाल डाला जाय; तो क्या बचेगा? बाल्यावस्था, बुढ़ापा, सोने का समय, बेकार बैठे रहने का समय, और बीमारी के दिन शेष यदि जीवन के सम्पूर्ण दिनों में से निकाल दिये जायँ तो कितने थोड़े दिन शेष रह जाते हैं।

मनुष्य जीवन ईश्वरीय देन है। यदि वह अल्प है तो उससे सुख

भी अधिक होगा। दीर्घ गर्हित जीवन से हमको क्या लाभ? क्या अधिक दुष्कर्म करने के लिये अपना जीवन गढ़वाना चाहते हो? अब रही बात भलाई करने की। तो क्या वह जिसने तुम्हारा जीवन परिमित कर दिया है उतने दिन के कर्मों को देख कर सन्तुष्ट न होगा।

ऐ शोक के पुतले मनुष्य; तू अधिक दिन तक क्यों जीवित रहना चाहता है? केवल श्वाँस लेने के लिये, खाने पीने के लिये और संसार का सुख भोगने के लिये! यह तो पहले ही जाने कितने बार तू कर चुका है। बार बार वही वही करना अरुचिकर और व्यर्थ नहीं है?

क्या तू अपने गुणों और बुद्धि की वृद्धि करेगा? परन्तु शोक! न तो तुझे कुछ सीखना है और न तुझे कोई शिक्षक मिलता है? तुझे जो अल्प जीवन दिया गया है जब तू उसी का सदुपयोग नहीं करता तो दीर्घ जीवन के लिये फिर क्यों अभिलाषा करता है?

हम में विद्या का अभाव है, इसके लिये तू क्यों पश्चात्ताप करता है? उसका अन्त तो तेरे ही साथ स्मशान में हो जायगा। इसलिये इस संसार में ईमानदार बन कर रह, तभी तू चतुर कहलायेगा।

"कौव्वे और हिरनों की अवस्था १०० वर्ष की होती है; और हमारी आयु इतनी दीर्घ क्यों नहीं होती?" ऐसा ध्यान में भी न लाओ। छिः छिः, तुम अपनी समता कौव्वों और हिरनों से करते हो। यदि उनसे तुलना करने बैठो तब भी उनमें विशेष गुण मिलेंगे। वे तुम्हारी तरह न तो झगड़ालू हैं और न कृतघ्नी हैं, उलटे वे तुम्हें उपदेश देते हैं, कि निष्कपट और सादगी के साथ जीवन व्यतीत करने से बुढ़ापे में सुख होता है।

क्या तुम अपने जीवन को इन पशु पक्षियों से अधिक उपयोगी बना सकते हो? यदि नहीं तो अल्प जीवन तो तुम्हें मिलना ही चाहिये।

मनुष्य जानता है कि मैं थोड़े दिन तक इस संसार में रहूँगा, तब भी अत्याचार करने के लिये संसार को अपना गुलाम बना कर छोड़ता है।

यदि कहीं वह अमर होता तो न मालूम कितना भीषण अत्याचार करता।

ऐ मनुष्य ! तुझे जीवन बहुत काफी मिला है। परन्तु तू इसे न जानता हुआ सदैव दीर्घ जीवन के लिये झींकता है। सच तो यह है कि तुझे दीर्घ जीवन की कुछ भी आवश्यकता नहीं, क्योंकि तू उसका दुरुपयोग कर रहा है। तू उसे इस तरह व्यर्थ गँवाता है जैसे तुझे आवश्यकता से अधिक जीवन दिया गया हो, और फिर भी शिकायत करता है कि मेरा जीवन दीर्घ नहीं बनाया गया।

मनुष्य, सम्पत्ति का ठीक ठीक उपयोग करने से धनवान् होता है। केवल धन की प्रचुरता से ही वह धनी नहीं कहा जा सकता। विज्ञ जन पहले ही से संयम-पूर्वक रहते हैं और आगे भी संयम का ध्यान रखते हैं। परन्तु मूर्खों का हमेशा ही "श्रीगणेशायनमः" हुआ करता है। चलो प्रथम धनोपार्जन करलें और फिर इसका उपयोग कर लेंगे" ऐसा विचार छोड़ दो। वह, जो वर्तमान समय का दुरुपयोग करता है। एक प्रकार से अपना सर्वस्व गँवा रहा है। सैनिक के हृदय को बाण सहसा बेध देता है। उसे कुछ खबर नहीं कि यह बाण कहाँ से आया। उसी प्रकार मृत्यु मनुष्य को एकाएक आ घेर दबोचती है जब उसे स्वप्न में भी यह ख्याल नहीं होता कि मैं इस प्रकार काल का ग्रास बन जाऊँगा।

अब बतलाइये, जीवन क्या है जिसकी लोगों को इतनी इतनी उत्कट इच्छा रहती है ? अथवा स्वासोच्छ्वास क्या वस्तु है जिसका चाव जनसाधारण इतना करते हैं ? उत्तर यही देना पड़ेगा कि यह जीवन भ्रमोत्पादक और आपत्तिपूर्ण है। इसके आदि में अज्ञान, मध्य में दुःख और अन्त में शोक होता है।

जिस प्रकार एक लहर दूसरी लहर को धक्का देती है और फिर दोनों पीछे से आई हुई तीसरी लहर में अंतर्भूत हो जाती हैं, उसी प्रकार जीवन में एक संकट के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा और तीसरे के

बाद चौथा ऐसे ही नये-नये संकटों का आना जाना लगा रहता है, प्रत्युत बड़े संकट में पूर्व के छोटे-छोटे संकट विलीन हो जाते हैं। यदि सच पूछिये तो हमारे भय ही हमारे वास्तविक संकट हैं और असंभव बातों के पीछे पड़ कर निराशाओं को मोल लेते हैं।

मूर्ख मृत्यु को डरते हैं; और अमर होने की भी इच्छा करते हैं।

जीवन का कौनसा भाग हम हमेशा अपने साथ रखना चाहते हैं ! यदि कहिये जवानी, तो क्या जवानी व्यभिचार, और धृष्टता में व्यतीत करने के लिये माँग रहे हो। और यदि कहो बुढ़ापा, तो क्या निर्वीर्य अवस्था ही तुम्हें अधिक पसन्द है !

ऐसा कहा जाता है कि, सफेद बालों का बड़ा सत्कार होता है। यह बात सच है, परन्तु सद्‌गुण यौवन का भी मान बढ़ा सकता है, बिना सद्‌गुणों के बुढ़ापे का प्रभाव आत्मा की अपेक्षा शरीर पर ही अधिक पड़ता है।

कहते हैं कि, वृद्ध पुरुषों का आदर इसलिये होता है कि वे विश्रृङ्खलता का तिरस्कार करते हैं। परन्तु जब हम देखते हैं कि वे व्यसन और विषय का तिरस्कार स्वयं नहीं करते, किन्तु व्यसन और विषय उनका ही तिरस्कार करते हैं, तब हमें यही कहना पड़ता है कि लोगों का स्वयं का उपर्युक्त कथन कुछ बहुत सत्य नहीं है।

अतएव यौवन काल में सद्‌गुणों को उपलब्ध करो तभी बुढ़ापे में भी सत्कार होगा।



दूसरा खण्ड

मानवीय दोष और उनके परिणाम

पहला प्रकरण

वृथाभिमान

मनुष्य का मन चञ्चल है। उच्छृङ्खलता जहाँ चाहती है उसे खींच ले जाती है। निराशा उसे व्याकुल किये रहती है, और भय कहता है कि, मैं तुझे खा ही डालूँगा। किन्तु इन सब की अपेक्षा मन पर अहङ्कार की ही सत्ता अधिक है। इसलिये मानवी आपत्तियों को देख कर आँसू न बहाओ, बल्कि उनकी मूर्खता पर यदि हँसो तो कोई हानि नहीं। अहङ्कारपूर्ण मनुष्य का जीवन स्वप्न के समान होता है।

मनुष्यों में सब से अधिक प्रसिद्ध योद्धा भी यदि अहङ्कार रखता है तो उसका अस्तित्व व्यर्थ है। जनता अस्थिर और कृतघ्न है, इसलिये बुद्धिमानों को इसकी विशेष परवाह न करनी चाहिये।

जो मनुष्य अपना वर्तमान काम-धंधा छोड़ कर सोचने बैठता है कि भविष्य में जब हमें बड़ा पद मिलेगा तो हम क्या २ करेंगे, वह मनुष्य वर्तमान जीविका से भी हाथ धो बैठता है, क्योंकि दूसरे उसकी ताक लगाये रहते हैं, और अन्त में फिर उसे धूल ही फाँक कर रहना पड़ता है। इसलिये अपने वर्तमान पद के काम ठीक ठीक करो। ऐसा करने से भविष्य के उच्च काम भी तुम बड़ी चौकसी से कर सकोगे।

अहङ्कार मनुष्य को अन्धा बना देता है। इसी के कारण अपने मन के विचार अच्छी तरह उसकी समझ में नहीं आते! अहङ्कार के कारण जब तुम अपने को नहीं देख सकते तब दूसरे तुम्हें अवश्य ही अच्छी तरह देखते रहते हैं।

निरर्थक शब्दों में दूसरों की वृथा खुशामद क्यों करते हो ! तुम जानते हो कि जब कोई तुम्हारे सामने "हाँ जी, हाँ जी" करता है, तब तुम उसकी ओर कितना ध्यान देते हो ! खुशामदी मनुष्य जान बुझ कर तुमसे झूठ बोलता है, और वह भी जानता है कि तुम उसको धन्यवाद दोगे परन्तु तुम सदैव उससे सत्य और सरल भाषण करो; इससे वह भी ऐसा ही करेगा।

वृथाभिमानी पुरुष अपने ही विषय का वार्तालाप करने में प्रसन्न होता है, परन्तु वह नहीं समझता कि दूसरे उसे सुनना पसन्द नहीं करते।

यदि उसने कोई अच्छा काम किया, अथवा उसके पास कोई उत्तम वस्तु हुई, तो वह बड़ी खुशी के साथ लोगों से कहता फिरता है। वह चाहता है दूसरे उसका गुण-गान करें, किन्तु उसकी आशा निराशा रूप में परिणत हो जाती है। लोग कहते तो हैं कि अमुक मनुष्य ने अमुक काम किया, अमुक मनुष्य में अमुक गुण है, परन्तु पीछे से यह भी कहने लगते हैं कि देखो तो वह मनुष्य कितना घमण्डी है।

मनुष्य एक दफे में कोई काम नहीं कर सकता। जो मनुष्य अपना ध्यान बाहरी सौन्दर्य पर लगाता है, आन्तरिक मूलतत्व को खो बैठता है। अप्राप्य प्रलोभनों के पीछे लगा रहता है, और जिससे उसका गौरव होगा, जिससे उसको मान मिलेगा, उसकी परवाह नहीं करता।

दूसरा प्रकरण

चंचलता

ऐ मनुष्य ! प्रकृति तुझे सदैव चंचल बनाने का प्रयत्न करती है, इसलिये उससे सावधान रह।

तू माँ के गर्भ से ही चंचल और अस्थिर है, पिता की चंचलता भी तुझ में उतर आई है, ऐसी दशा में तू निश्चल और स्थिर किस प्रकार बन सकता है।

जिसने तेरा शरीर बनाया, उसने तुझे कमजोरी भी दी। और जिसने तुझे आत्मा दी उसने तुझे दृढ़ता का हथियार भी दिया। उस हथियार का उपयोग कर। उसका उपयोग करने से बुद्धिमान बनेगा और बुद्धिमान होने से तू सुखी होगा।

जो मनुष्य कोई एक आध अच्छा काम करता है, उसे बहुत समझ बूझ कर अपनी बड़ाई मारना चाहिये। क्योंकि वह उस काम को अपनी इच्छा से नहीं कर पाता है। वह काम या तो बाहरी प्रोत्साहन से अथवा घटनाचक्र के फेर-फार में पड़कर, बिना किसी निश्चय के, आप से आप, हो जाया करता है, इसलिये काम का श्रेय घटनाचक्र और प्रोत्साहन को ही मिलना चाहिये।

मनुष्य-स्वभाव की दो कमजोरियां हैं—चित्त की व्यग्रता और अस्थिरता। इसलिए किसी काम को प्रारम्भ करते समय इन दोनों कमजोरियों से होशियार रहो।

चञ्चलता के साथ काम करना एक बहुत ही निन्दनीय बात है। इस चञ्चलता को हम उसी समय वशीभूत कर सकते हैं जब मन की दृढ़ता का अवलम्ब लें।

चञ्चलचित्त मनुष्य जानता है कि मैं चंचल हूं, परन्तु वह यह नहीं जानता कि मैं ऐसा क्यों हूं। वह देखता है कि मैं भ्रष्ट हो रहा हूं परन्तु भ्रष्ट होने के कारण उसे नहीं सूझ पड़ता। सब बातों में चञ्चलता करना छोड़ दो, लोग तुम्हारा विश्वास करने लगेंगे।

काम करने के लिये कुछ नियम बना लो और देखो कि वे ठीक हैं, अथवा नहीं। यदि ठीक जान पड़े तो स्थिर चित्त होकर उन्हीं के अनुसार काम करना प्रारम्भ कर दो। इस प्रकार मनोविकार तुम्हें तङ्ग नहीं करेंगे, चित्त की दृढ़ता सद्गुणों को स्थिर करके कठिनाइयों को दूर करेगी। और चिन्ता तथा निराशा को तुम्हारे पास तक आने का साहस नहीं होगा।

किसी मनुष्य की बुराई पर विश्वास न करो जब तक तुम उसे न देख लो और बुराई यदि सचमुच देखने में आवे तो उसे भूल जाओ।

जिससे शत्रुता हो चुकी उससे मित्रता नहीं हो सकती, क्योंकि मनुष्य अपने दोष सुधारने का प्रयत्न नहीं करता।

जिसने अपने जीवन के कुछ नियम नहीं बनाये उसके काम ठीक किस प्रकार हो सकते हैं? जो विचार-शक्ति से काम नहीं लेता उसके काम भी ठीक नहीं उतरते।

चञ्चल पुरुष का चित्त शान्त नहीं रहता। वह उन लोगों की शान्ति को भी भङ्ग करता है जिनके साथ वह उठता बैठता है। उसका जीवन बेढङ्गा होता है। उसके काम बेतुके होते हैं और उसका चित्त हमेशा वायु की तरह् रुख बदला करता है।

आज तुम्हें वह प्यार करता है और कल ही घृणा कर सकता है। क्यों? उसे स्वयं नहीं मालूम कि मैंने पहिले क्यों प्यार किया और अब क्यों घृणा करता हूँ।

आज तुम्हारे साथ अत्याचार करता है, कल वह तुम्हारे नौकर से भी अधिक नम्र हो सकता है। क्यों? बस इसलिये कि अधिकार के बिना जो आज उद्धतस्वभाव है वह अधीनता के बिना कल दास भी बन सकता है।

आज जो मनुष्य खूब खर्चीला है, कल सम्भव है वह पेट भर भोजन भी न करे। जो नियमित नहीं है, उसकी यदि ऐसी दशा हो, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

कोई नहीं कह सकता कि गिरगिट का रङ्ग काला है, लाल है, अथवा पीला है, बस इसी प्रकार चञ्चल चित्त पुरुषों के चित्त का पता लगाना भी बड़ा कठिन है।

ऐसे मनुष्य का जीवन स्वप्न के सदृश नहीं तो और क्या है? प्रातः प्रसन्न मुख उठता है, दोपहर में मलिन वदन हो जाता है। अभी ईश्वर

तुल्य बना है, फिर कीड़े मकोड़ों की तरह क्षुद्र बन जाता है। घड़ी हँसता है, घड़ी रोता है, घड़ी काम करने लगता है और घड़ी छोड़ देता है।

ऐसी दशा में सुख-दुःख, यश अपयश; हर्ष-विषाद सब उसके लिये बराबर हैं। इनमें से कोई चिरकाल तक नहीं टिकते।

चञ्चल मनुष्य का सुख बालू की नींव पर बने हुए राज प्रासाद की नाईं है। चञ्चलता रूपी वायु के झँकोरे से उसकी जड़ हिलने लगती है। फिर वह गिर पड़ता है और मूढ़ लोग आश्चर्य करने लगते हैं।

परन्तु दृढ़ मनुष्य जीवन के नियम बनाकर उन्हीं के अनुसार चलता है। किसी आपत्ति के आजाने पर अपने मार्ग से विचलित नहीं होता। उसकी गति गम्भीर, अथक और अस्खलित होती है और उसके अन्तःकरण में शान्ति का निवास रहता है।

विघ्न आते हैं; परन्तु वह उनकी परवाह नहीं करता। दैविक और मानुषिक शक्तियाँ उसे रोकती हैं, परन्तु वह आगे ही को पैर रखता जाता है।

पहाड़ उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता और समुद्र उसके चरण-स्पर्श से सूख जाता है। सिंह उसके सामने आकर लेट रहता है और वन के अन्य पशु उसे देख कर भाग जाते हैं!

वह भयपूर्ण स्थानों से होकर गुजरता है और मृत्यु को अपने पास नहीं फटकने देता।

तूफान उसके कन्धों से टक्कर लगाना चाहता है, किन्तु छूने का साहस नहीं होता। सिर के ऊपर बादल गरज रहा है, परन्तु उसे क्या! बिजली चमकती है, परन्तु उसे भयभीत नहीं कर सकती, प्रत्युत उसका तेज बढ़ाती है। ऐसा दृढ़ निश्चयी मनुष्य संसार के दूरस्थ प्रदेशों में भी जाकर अपना प्रभाव जमाता है। सुख उसके आगे-आगे नाचता चलता है। शान्ति देवी का मन्दिर उसे दूर ही से दृष्टिगोचर होने लगता है।

वह दौड़कर साहस के साथ उसमें प्रवेश करता है, जहाँ सदैव उसका निवास रहता है।

इसलिये ऐ मनुष्य ! अपने दिल को उसी में लगा जो न्याय सङ्गत है, और समझ रख कि, निर्विकारता ही मनुष्य का श्रेष्ठ ऐश्वर्य्य है।

—:o:—

तीसरा प्रकरण

दुर्बलता

मनुष्य प्राणी वृथाभिमानी और अस्थिर होने के कारण स्वाभाविक ही दुर्बल होता है, क्योंकि अस्थिरता और विनाश में बड़ा घना सम्बन्ध है। दुर्बलता के विना वृथाभिमान नहीं आ सकता। इसलिये यदि तू एक से होने वाले भय को छोड़ दे, तो दूसरे से होनेवाली हानियों से बच सकता है।

जहाँ तू अपने को बड़ा सामर्थ्यवान समझता है, जहाँ तू अपने को बड़ा प्रभावशाली दिखलाता है, वहीं तू विशेष कमजोर है, यहाँ तक कि जो-जो साधन तेरे पास हैं, अथवा जिन-जिन अच्छी बातों का तू उपयोग करता है, उनमें भी तू कमजोर है।

क्या तेरी इच्छायें क्षणभंगुर नहीं हैं ? क्या तुझे मालूम है कि तू किस बात की इच्छा कर रहा है ? इच्छित वस्तु मिल जाती है, तब भी तुझे संतोष नहीं होता। इस बात को जब तू चाहे देख ले।

वर्तमान वस्तुओं में तुझे आनन्द क्यों नहीं मिलता ? भावी वस्तुएँ तुझे क्यों प्रिय मालूम होती हैं ? इसका कारण यह है कि वर्तमान वस्तुओं के आनन्द से तू ऊब जाता है, और भावी वस्तुओं की बुराइयों से तू बिलकुल अनभिज्ञ है। इसलिये समझ रख कि सच्चा आनन्द सन्तोष में है।

यदि बहुत-सी वस्तुएँ परमात्मा स्वयं तेरे सामने रख दे और तुझ से कहे कि जो तेरा जी चाहे, ले ले। तो भी क्या संतोष तेरे साथ

रहेगा ? उस हालत में भी क्या सुख तेरे सामने हाथ जोड़े खड़ा रहेगा ?

अफसोस; तेरी कमजोरी विघ्न डालती है और तेरी दुर्बलता बाधक होती है। भिन्न-भिन्न वस्तुओं में तुझे मौज मिलता है, परन्तु जिस वस्तु से चिरस्थायी सुख मिले वही वस्तु चिरस्थायी प्रेम के योग्य है।

सुख जब तक तेरे पास है, तब तक तू उससे घृणा करता है और जब चला जाता है तब उसके लिये पश्चात्ताप करता है। उसके बाद जो दूसरा सुख आता है उसमें भी तो तुझे आनन्द नहीं मिलता। उसके लिये भी तो तू अनखाया करता है। कौन सी बात है जिसमें तू गलती न करता हो ?

वस्तुओं की इच्छा करने और उपलब्ध होने पर उनको उपयोग करने में मनुष्य की दुर्बलता विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है। जो वस्तु शुद्ध और मधुर होती है वह हमें कडुई मालूम होती है। हमारे सुख से दुःख और आनन्द से शोक उत्पन्न होता है।

इसलिये अपने सुख-स्वाद परिमित रक्खो, तभी वे तुम्हारे साथ रहेंगे, और विवेक के साथ हर्ष मनाओ तभी तुम दुःख से बचोगे।

किसी प्रेमिका से प्रेम लगाने में पहिले आहें भरनी पड़ती हैं और पीछे भी दुःख तथा निराशा होती है। अर्थात् जिस वस्तु के प्राप्त करने के लिये तू मरता है वह तुझे इतनी अधिक मिल जाती है कि उससे जान छुड़ाना तुझे कठिन हो जाता है।

हमारी प्रशंसा में यदि आदर होगा और प्रीति में यदि मित्रता होगी तो अन्त में इतना सन्तोष होगा कि उसके सामने बड़ा से बड़ा आनन्द कोई चीज नहीं। इतनी शांति मिलेगी कि उसके सामने बड़े भारी हर्ष का भी कोई मूल्य न होगा।

ईश्वर ने भलाई दी है तो उसमें उतनी ही मिली हुई बुराई भी

दी है; परन्तु साथ ही साथ बुराई निकाल कर फेंक देने का साधन भी दिया है। जिस प्रकार सुख में दुःख मिश्रित है उसी प्रकार दुःख भी सुख से खाली नहीं है। सुख और दुःख एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी एक दूसरे से मिले हुए हैं। उसको सुख ही सुख बनाना अथवा दुःख ही दुःख बनाना हम पर निर्भर है। उदासीनता से कभी-कभी आनन्द मिलता है, और हर्ष के अतिरेक में आँसू बहने लगते हैं। सबसे अच्छी वस्तु भी मूर्ख के हाथ उसके नाश का कारण बन सकती है और बुद्धि-मान बुरी से बुरी वस्तु से भी अपने लाभ की बातें ढूँढ़ ले सकता है।

मनुष्य प्राणी स्वभाव ही से इतना कमजोर है कि केवल अच्छे अथवा केवल बुरे होने की शक्ति उसमें नहीं है। इसलिये उसे चाहिये कि बुराइयों की ओर से मन हटा कर जो कुछ अच्छाई उसके हृदय में वर्तमान है उसी में सन्तोष करे।

मनुष्य की स्थिति उसकी योग्यता के अनुसार बनाई गई है। इस-लिये अप्राप्य वस्तुओं के प्राप्त करने की इच्छा न करो, और न इस बात के लिये शोक करो कि सब वस्तुएँ हमें क्यों नहीं मिल जातीं।

क्या तू चाहता है कि हमें धनियों की उदारता और गरीबों का सन्तोष एक ही साथ मिल जाय ? यह उसी प्रकार असम्भव है जिस प्रकार सौभाग्यवती स्त्री में विधवा के गुण।

यदि तेरे पिता के प्राण संकट में पड़े हों तो क्या न्याय दृष्टि से उनको मरवा डालेगा, अथवा कर्तव्य बुद्धि से उनकी रक्षा करेगा। यदि तेरा भाई सूली पर लटकाया जा रहा हो तो, क्या तू उसे बचावेगा नहीं, और उसकी मृत्यु को अपनी मृत्यु नहीं समझेगा।

सत्य एक ही है। अपनी शंकाओं को तूने स्वयं उत्पन्न किया है। जिसने तुझे गुण दिये उसने उसके गौरव का ज्ञान भी तुझे दिया। जैसा तेरी आत्मा कहे वैसा कर, परिणाम अच्छा होगा।

चौथा प्रकरण

ज्ञान की अपूर्णता

यदि कोई वस्तु सुन्दर है, यदि कोई वस्तु स्पृहणीय है, यदि कोई वस्तु मनुष्य के लिये सुलभ है जिससे उसकी प्रशंसा हो तो वह ज्ञान है। ऐसा होते हुए भी किसने उसे पूर्ण रूप से उपार्जित किया है!

राजनीतिज्ञ कहते हैं कि हम बड़े ज्ञानी हैं, राजा कहता है, वाह हम बड़े ज्ञानी हैं, परन्तु प्रजा दोनों में से भला किसको समझती है?

मनुष्य के लिये दुराचार की कोई आवश्यकता नहीं है और न दुर्गुणों को सहन करने की जरूरत है। परन्तु कुछ ध्यान भी है कि नियमों की अवहेलना हमसे कितने पाप कर्म करा डालती है और सामाजिक नियमों के पालन न करने के कारण हमसे कितने पाप हो जाते हैं!

ऐ शासक! जरा ख्याल में रक्खे रह कि तेरे द्वारा किया हुआ एक पाप दस आदमियों को दंड से बचाने की अपेक्षा भी बुरा हो सकता है।

जब तेरे घराने वालों की संख्या बढ़ जाती है अथवा जब तेरे बहुत से बच्चे हो जाते हैं तो क्या तू उन्हें निरपराधी गरीब-गुरबों को सताने के लिये नहीं भेजता और क्या वे लोग उनके हाथ से नहीं मारे जाते, जिन्होंने उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ा है!

यदि तेरा मनोरथ हजारों मनुष्य के प्राण लेने से प्राप्त होता हो तो ऐसा मत कर। तुझे याद रखना चाहिये कि जिस परमेश्वर ने तुझे बनाया है उसी ने इन्हें भी बनाया है और इनकी जान इतनी ही प्यारी है जितनी की तेरी।

क्या तू यह समझता है कि बिना कठोरता किये न्याय नहीं हो सकता! यदि सचमुच ऐसे तेरे विचार हैं तो तू अपनी ही फजीहत कर रहा है।

तू जो दम-दिलासा देकर किसी अभियुक्त से पूछता है कि तू ने क्या अपराध किया; और उससे अपना अपराध स्वीकार कराना चाहता है तो क्या ऐसा करके तू स्वयं उसका अपराधी नहीं बनता है ?

जब तू शंका मात्र से किसी को दंड देना चाहता है तो क्या कभी तू ख्याल करता है कि सम्भव है अभियुक्त पर झूठा अपराध लगाया गया हो; और वह बिलकुल बेगुनाह हो ?

इस प्रकार के दंड से क्या तेरी इच्छा की पूर्ति होती है ? अभियुक्त जब अपना अपराध कबूल कर लेता है तो क्या तेरी आत्मा को संतोष होता है ? जब तू उसे घुड़की देता है तो, सम्भव है, वह डर कर, तुझे प्रसन्न करने के लिये, झूठमूठ अपराध स्वीकार कर ले जिसको उसने किया नहीं। कैसे अफसोस की बात है कि सच्चा-सच्चा हाल नहीं जानता; और अपराधी को मरवा डालता है।

ऐ सचाई से अनभिज्ञ अल्पज्ञानी मनुष्य ! समझ रख, कि जब तेरा परम पिता तुझसे इसका हिसाब माँगेगा तो तू रह-रह कर पछतायेगा कि हाँ मैंने क्या किया; जिन लोगों को मारा वे तो निरपराधी थे।

न्याय के पालन करने में जब मनुष्य प्राणी असमर्थ है तो उसे सत्य ज्ञान किस प्रकार हो सकता है ? सत्य के पास तक उसकी पहुँच नहीं हो सकती। जिस प्रकार सूरज की रोशनी से उल्लू की आँखें चकाचौंध होने लगती हैं उसी प्रकार सत्य की कांति से तुम्हारी आँखें चकाचौंध होने लगेंगी। यदि तू सत्य के पास पहुँचना चाहता है तो पहिले उसके चरणों में अपना सिर नम्रतापूर्वक झुका। यदि तू सत्य का ज्ञान उपलब्ध करना चाहता है तो पहिले यह समझ कि तुझमें कितना अज्ञान भरा है।

सत्य का मूल्य मोती से भी अधिक है। इसलिये बड़ी सावधानी के साथ उसकी खोज करो। नीलम, माणिक और हीरे यह सब के पैर की धूल है इसलिये बड़े पुरुषार्थ के साथ तलाश करो।

उद्योग करना ही सत्य की प्राप्ति का मार्ग है। एकाग्रता उसके मन्दिर का मार्ग दिखाने वाली दासी है। परन्तु मार्ग में थक कर बैठ न जाओ . जब तुम उसके पास पहुँच जाओगे तब तुम्हारे सब दुःख-सुख के रूप में परिवर्तित हो जायँगे।

"सत्य किस काम का! सत्य के दंगे-बखेड़े उठ खड़े होते हैं। कपट का व्यवहार बहुत अच्छा है, देखो इससे अनेकों मित्र बनते हैं। मैं तो इसी का आश्रय लूँगा"—ऐसा मुँह से न निकालो, क्योंकि सत्य के द्वारा बने हुए शत्रु चापलूसी (कपट व्यवहार) द्वारा बनाये हुए मित्रों से बढ़कर हैं।

मनुष्य स्वभाव ही से सत्य की इच्छा करता है; परन्तु जब वह उसके सामने आता है तब उसकी कदर नहीं करता और जब वह जबरदस्ती से मनुष्य के पास आता है तब वह क्रोध करने लगता है। इसमें सत्य का कोई दोष नहीं है क्योंकि वह सर्वप्रिय है। परन्तु दोष है मनुष्य की दुर्बलता का। वह उसके तेज को सहन नहीं कर सकता। अब भला तुम्हीं बतलाओ कि मनुष्यप्राणी कितना अपूर्ण है।

यदि तू अपनी अपूर्णता को अधिक जानना चाहता है तो ईश्वरोपासना के समय अपने दिल से पूछ कि धर्म किस लिये बनाया गया। उत्तर मिलेगा कि तेरी कमजोरी का स्मरण दिलाने के लिये; और तुझे यह बतलाने के लिये कि भलाई की आशा केवल परमात्मा से करनी चाहिये।

धर्म सिखलाता है कि हम खाक से पैदा हुए हैं और खाक ही में मिल जायँगे। ऐसा होते हुए भी यदि शरीर के लिये, पश्चात्ताप करें तो यह सिवाय हमारी कमजोरी के भला और क्या है?

जब दूसरे तुमसे सौगन्ध खिलाते हैं, अथवा तुम स्वयं दूसरों को धोखा न देने के लिये सौगन्ध खाते हो, तो क्या तुम नहीं देखते कि तुम्हारे चेहरे पर एक प्रकार की लज्जा छा जाती है। इसलिये तुम्हारी

बनना सीखो तो पश्चाताप न करना पड़ेगा और ईमानदारी के साथ रहो तो सौगन्ध खाने की आवश्यकता न पड़ेगी।

जो अपने दोष चुपचाप सुन लेता है वह दूसरों को बड़े जोरों के साथ भला बुरा कह सकता है। यदि तुम पर कोई सन्देह करे तो स्पष्ट रूप से उत्तर दो। जो अपराधी नहीं, उसको भय कैसा।

जो हृदय का कोमल है, वह प्रार्थना करने पर अपने अङ्गीकृत कार्य से मुँह मोड़ सकता है। परन्तु जो घमण्डी है, वह प्रार्थना से और शेर हो जाता है। जब तुझे अपनी अज्ञानता मालूम हो जायगी, तभी तू दूसरों की बातों को ध्यान से सुनेगा भी।

यदि न्यायी बनने की सचमुच तेरी इच्छा है तो मनोविकार छोड़ कर दूसरों की बातों को सुन।

पाँचवाँ प्रकरण

दुःख

भलाई करने में मनुष्य कमजोर और अपूर्ण है। सुख में दुर्बल और अस्थिर बनता है; दुःख में ही केवल दृढ़ और अचल होता है।

दुःख मानवी शरीर का एक धर्म है। यह निसर्ग देव का एक विशेष अधिकार है। वह मनुष्य के हृदय में वास करता है; और उसके मनोविकार ही से उसकी उत्पत्ति होती है।

जिसने तुझे मनोविकार दिया उसने तुझे उनको वशीभूत करने की शक्ति भी दी, उसका उपयोग करने ही से उन्हें दबा सकेगा।

तेरी उत्पत्ति क्या लज्जास्पद नहीं है तब फिर तेरा विनाश क्या श्रेयस्कर नहीं ? देखो मनुष्य विनाश करने वाले हथियारों को सोने और रत्नों से अलंकृत करके अपने शरीर पर धारण करते हैं।

जो अनेकों बच्चे पैदा करता है, लोग उनका नाम धरते हैं, और जो सैकड़ों की गर्दन लड़ाई में काटता है लोग उसका सत्कार करते हैं, परन्तु

यह सब ढकोसले हैं। रीति-रिवाज, सत्य का स्वभाव नहीं बदल सकते, और न एक मनुष्य की राय से न्याय का नाश हो सकता है। जिसको यश मिलना चाहिये, उसको अपयश और जिसको अपयश मिलना चाहिये उसे यश मिलता है।

मनुष्य के उत्पन्न होने का तो एक ही मार्ग है, परन्तु उनको नष्ट होने के अनेकों मार्ग हैं, जो दूसरों को जन्म देता है उसकी कोई प्रशंसा नहीं करता; और न उसको कोई मान देता है; परन्तु जो दूसरों का खून करता है उसका नाम होता है, और उसे जागीर मिलती है।

तथापि यह समझ रखना चाहिये कि जिसके बहुत से बच्चे हैं, आनंद उसी को है और जिसने दूसरों की जान ली उसे कुछ भी सुख नहीं।

मनुष्य को काफी दुःख दिया गया है, परन्तु वह शोक करके उस की मात्रा और अधिक बढ़ाता है। जितने संकट मनुष्य को मिले हैं उनमें शोक सबसे निकृष्ट है। इसका न मालूम कितना बड़ा भाग मनुष्य को जन्म ही से दिया गया है। अब उसे अधिक बढ़ाने का प्रयत्न क्यों करना चाहिये।

दुःख करना मनुष्य का स्वभाव है और वह तुझे हमेशा घेरे रहता है। सुख एक बाहरी मेहमान है, जिसका आगमन कभी-कभी हुआ करता है। बुद्धि का उचित उपयोग करने से दुःख दूर होगा, और दूरदर्शिता के साथ काम लेने से सुख चिरकाल पर्यन्त रहेगा।

तेरे शरीर के प्रत्येक अङ्ग से दुःख होने की सम्भावना है, परन्तु आनन्द मिलने के मार्ग बहुत ही थोड़े और संकुचित हैं। आनन्द एक-एक करके आते हैं; परन्तु दुःख एक ही समय में सैकड़ों आ सकते हैं।

जिस प्रकार तिनका जलते ही भस्म हो जाता है, उसी प्रकार सुख आते ही एकदम अदृश्य हो जाता है, किसी ने जाना और किसी ने न जाना। दुःख बराबर आता है। दुःख स्वयं आता है; परन्तु सुख के लिए कोशिश करनी पड़ती है।

निरोगी मनुष्यों की ओर लोगों की दृष्टि कम पड़ती है। परन्तु

किंचित रोग से भी पीड़ित रोगी को वे बड़े ध्यान से देखते हैं; इसी प्रकार उच्च से उच्च कोटि के आनन्द का प्रभाव हम पर बहुत कम पड़ता है किन्तु थोड़े से थोड़े दुःख का असर आवश्यकता से अधिक होता है।

विचार करना ही मनुष्य मात्र का काम है। हम कैसे हैं, इस बात का ज्ञान उपलब्ध करना उसका पहला कर्तव्य है। परन्तु सुख में ऐसा कौन ख्याल करता है? फिर यदि हमें दुःख मिले भी तो आश्चर्य की क्या बात है?

मनुष्य भावी संकट का विचार करता है। उसके निकल जाने पर उसकी उसे याद रहती है। परन्तु वह नहीं देखता कि, संकट की अपेक्षा केवल उसके विचार ही से अधिक दुःख होता है। यदि वह दुःख उपस्थित होने पर उसे एकदम भूल जावे तो फिर उसे दुःख की सम-वेदना सहन न करनी पड़े।

जो विना कारण रोता है वह बड़ी भूल करता है। वह इसलिये रोता है कि रोना उसे बहुत प्रिय है।

जब तक तीर घुस नहीं जाता तब तक बारहसिंघा नहीं रोता; जब तक शिकारी कुत्ते हरिन को चारों ओर से घेर नहीं लेते तब तक उसकी आँखों से एक बूंद भी आँसू नहीं गिरता। एक मनुष्य ही ऐसा है जो मृत्यु आने से पूर्व ही उसके भयमात्र से घबड़ा कर रोने लगता है।

अपने कृत्यों का हिसाब देने के लिए हमेशा तैयार रहो और समझ रक्खो कि चिन्ता और भय-रहित मृत्यु सबसे बढ़िया मृत्यु है।

छठवाँ प्रकरण

निर्णय

ईश्वर ने मनुष्य को दो बहुत ही बड़ी शक्तियाँ दे रखी हैं—(१) विवेक शक्ति और (२) इच्छा शक्ति। वस्तुतः सुखी वह है जो इनका दुरुपयोग नहीं करता।

जिस प्रकार पर्वत पर का झरना जिन-जिन वस्तुओं को अपने साथ लेकर चलता है उन उन वस्तुओं को चूर चूर कर डालता है। उसी प्रकार जनापवाद से उस मनुष्य की बुद्धि चूर चूर हो जाती है जो उस की बुनियाद जाने बिन उस पर सहसा विश्वास कर बैठता है।

खबरदार! खबरदार! जिसको तुम सत्य समझते हो, ऐसा न हो कि वह कहीं असत्य निकल जाय; और जिस पर तुम अधिक विश्वास करते हो वह कहीं झूठ न सिद्ध हो। दृढ़ और स्थिर बनो, करने और न करने का निश्चय तुम स्वयं करो, ताकि उसका उत्तरदायित्व केवल तुम्हीं पर रहे।

इर्द-गिर्द की परिस्थियों को जाने बिना केवल कार्य से ही उसका परिणाम न निकाल लो। मनुष्यप्राणी घटनाचक्र के बाहर नहीं है।

चूंकि दूसरों के विचार हमारे विचारों से नहीं मिलते, इसलिए उनकी अवहेलना न करो। सम्भव है, हम दोनों गलती कर रहे हों।

जब तुम किसी मनुष्य की प्रशंसा उसकी उपाधियों के कारण कर रहे हो, और उन उपाधियों से वञ्चित दूसरे का तिरस्कार करते हो, उस समय तुम भूल करते हो। नकेल से ही ऊँट की परीक्षा भला कहीं होती है। उसकी परीक्षा के लिए सब अङ्गों को देखना पड़ेगा।

यह न समझो कि शत्रु के प्राण लेने से बदला मिल जाता है। मारकर तुम तो उसे शान्ति दे रहे हो और बदला लेने के सब अवसरों को अपने ही हाथों खो रहे हो। यदि तुमसे आकर कहे कि तुम्हारी माता व्यभिचारिणी है अथवा तुम्हारी स्त्री किसी दूसरे से प्रेम करती है, तो क्या तुम्हें दुःख न होगा! अवश्य होगा। किन्तु यदि इसके लिये तुम्हारा कोई तिरस्कार करे तो एक प्रकार से वह अपने को तिरस्कृत कर रहा है। भला कहीं एक मनुष्य दूसरों के दुर्गुणों का उत्तरदाता हो सकता है।

न तो अपने हीरे की बेकदरी करो और न दूसरों के हीरे की विशेष प्रशंसा करो। समझ रखखो, वस्तु का मूल्य खरीददारों और बेचनेवालों के हर्ष से घटता बढ़ता है।

"हमारी पत्नी तो हमारे आधीन है" यह ख्याल करके उसका मान कम न करो। क्या समझ कर उसने तुम्हें पति बनाया? केवल तुम्हारे गुणों को देखकर। इस बड़े उपकार के लिए क्या तुम उसको कम प्यार करोगे?

विवाह करते समय पत्नी के साथ यदि तुम्हारे वादे सच्चे रहे हैं, तो जब तक वह जीवित है, तब तक तुम चाहे भले ही मुँह फेरे रहो, परन्तु उसकी मृत्यु से तुम्हें दुःख अवश्य होगा।

"उस मनुष्य का विवाह हो गया है, इसलिये उसका जीवन सर्वोत्तम है" ऐसा न सोचो! हाँ इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उसका जीवन सुखमय जरूर है।

"हमारा मित्र आँसू बहा रहा है" केवल इतने ही से उसकी हानि की कल्पना न कर लो। ऐसी बड़ी-बड़ी आँसू की बूँदों की हानि से कोई सम्बन्ध नहीं है। कभी-कभी लोग बिना हानि हुए भी दूसरों की सहानुभूति आकृष्ट करने के लिए झूठ मूठ रोने लगते हैं।

चाहे कोई काम बड़े धूम धड़क्के और गाजे बाजे के साथ किया गया हो, तो भी उसकी प्रशंसा न करो। महात्मा लोग बड़े बड़े काम करते हैं, परन्तु इसके लिए ढोल पीटते नहीं फिरते।

कोई साधारण मनुष्य जब दूसरों की कीर्ति सुनता है तो उसे आश्चर्य होने लगता है, परन्तु जिसका हृदय शांतिपूर्ण है उसको उसी से सुख मिलता है।

"दूसरों ने इस उत्तम काम को किसी बुरी इच्छा से किया" ऐसा न कहो; क्योंकि तुम्हें दूसरों के दिल का हाल क्या मालूम? दुनियाँ तुम्हें अवश्य थूकेगी और कहेगी कि तुम्हारा हृदय ईर्षा से भरा हुआ है।

दांभिकता में दुर्गुण की अपेक्षा मूर्खता ही अधिक है, ईमानदार होना उतना ही सुलभ है जितना ईमानदार होने का बहाना करना।

दूसरों से अपकार के बदले उपकार अधिक करो। मानों ऐसा करने से वे तुम्हारे साथ अपकार की अपेक्षा उपकार अधिक करेंगे।

घृणा करने के बदले प्रेम करने की ओर अधिक प्रवृत्त रहो। ऐसा करने से लोग घृणा करने की अपेक्षा अधिक प्रेम करेंगे।

दूसरों की निन्दा करने के बदले उनकी प्रशंसा करो। ऐसा करने से लोग तुम्हारे गुणों की प्रशंसा करेंगे और तुम्हारे दोषों पर ध्यान न देंगे।

जब तुम किसी की भलाई कर रहे हो तो यह ख्याल करके करो कि भलाई करना उत्तम है। यह ख्याल करके न करो कि लोग तुम्हारी प्रशंसा करेंगे। उसी प्रकार बुराई इसीलिए न छोड़ो कि लोग इसके लिये तुम्हारी निन्दा कर रहे हैं; बल्कि यह समझ कर उसका परित्याग करो कि बुराई करना बुरा है। ईमानदारी को अच्छा समझकर अपनाओ; ऐसा करने से तुम ईमानदार सदा बने रहोगे। जो बिना किसी नियम के काम करता है; हमेशा चंचल रहता है।

बुद्धिमानों की लानतमलामत अच्छी है; किन्तु मूर्खों की प्रशंसा अच्छी नहीं है। बुद्धिमान तुम्हारे दोष इसलिए बतलाते हैं कि जिससे उन्हें तुम सुधार लो; परन्तु मूर्ख तुमको अपने ही सदृश समझ कर तुम्हारी प्रशंसा करता है।

जिस पद की योग्यता तुम में न हो उसे स्वीकार न करो। अन्यथा, वे लोग, जो उस पद के योग्य हैं, तुम्हारा तिरस्कार करेंगे।

जिस विषय का तुम्हें स्वयं ज्ञान नहीं है, उसका उपदेश दूसरों को न करो, नहीं तो जब यह बात उन्हें मालूम हो जायगी तो वे तुम्हारी निन्दा करने लगेंगे।

जिसने तुम्हें हानि पहुँचाई उससे मित्रता की आशा न रक्खो। जिसको हानि पहुँचाई गई है वह चाहे क्षमा भी कर दे, परन्तु जो हानि पहुँचाता है वह कभी क्षमा नहीं कर सकता।

अपने मित्र पर उपकार का बोझा न लादो। समझ रक्खो, यदि उसे मालूम हो गया, तो मित्रता फिर नहीं रहने की। थोड़े उपकार से मैत्री भंग हो जाती है, और बड़े उपकार से शत्रुता उत्पन्न होती है।

जो अपना ऋण नहीं अदा कर सकता, वह उसके स्मरण मात्र से झेंप जाता है और दूसरे को हानि पहुँचाता है। वह उस मनुष्य को देखकर लज्जित होता है।

दूसरों की बढ़ती देख कर खेद न करो और न अपने शत्रु की आपत्ति को देखकर खुशी मनाओ। यदि तुम ऐसा करोगे तो दूसरे भी ऐसा ही करने लगेंगे।

यदि मनुष्य मात्र का प्रेम संपादन करना चाहते हो तो अपनी परोपकार-बुद्धि को सार्वभौमिक बनाओ। यदि इस उपाय से तुम्हें प्रेम प्राप्त न हुआ हो तो फिर वह और किसी उपाय से नहीं मिलने का। फिर भी, चाहे वह तुम्हें प्राप्त न हो, परन्तु तुम्हें इस बात का संतोष अवश्य होगा कि तुमने अपने को उसके योग्य बनाया है।

सातवाँ प्रकरण

अहङ्कार

अहङ्कार और नीचता एक दूसरे के विपरीत देख पड़ते हैं, परन्तु मनुष्य प्राणी इन विपरीत बातों को भी एक समान बनाता है। वह एक ही समय अत्यन्त दुःखी और अहङ्कारयुक्त बनता है?

अहङ्कार बुद्धि के क्षय का कारण है। वह लापरवाही को बढ़ाता है। फिर भी यह न समझना चाहिये कि बुद्धि से उसकी कोई शत्रुता है।

कौन ऐसा है जो अपनी प्रशंसा और दूसरों की निन्दा न करता हो? जब स्वयं ईश्वर तक अपने अहङ्कार से नहीं बच सकता जो कि हमारा कर्ता है—तब फिर हमी उससे कैसे बचे रह सकते हैं?

मूढ़ विश्वास कहाँ से उत्पन्न हुआ? और खोटी उपासना कहाँ से चली? जो बात हमारी पहुँच के बाहर है उस पर वाद-विवाद करने से

और जो बात हमारे समझ में नहीं आ सकती उसको समझने की चेष्टा करने से इन दोनों की उत्पत्ति हुई।

हमारी बुद्धि परिमित और अल्प है, तब भी उसकी अल्पशक्ति का प्रयोग जैसा हमे करना चाहिये, वैसा हम नहीं करते। हम ईश्वर की महत्ता जानने का प्रयत्न नहीं करते। जब हम उसकी उपासना करने बैठते हैं तो उसकी ओर अपने ध्यान को पूर्ण रूप से नहीं लगाते।

जो मनुष्य अपने राजा के विरुद्ध बोलने में डरता है वह ईश्वर के कामों में दोष निकालता फिरता है।

जो मनुष्य, बिना आदर सत्कार के, अपने राजा का नाम लेना तक पसन्द नहीं करता वही मनुष्य जब झूठ को सत्य बतलाने के लिये सौगन्ध खाता है तो उसे लज्जा नहीं आती।

जो मनुष्य न्यायाधीश की आज्ञा को चुपचाप सुन लेता है, वही ईश्वर के साथ बहस करने का दम भरता है। वह हाथ पैर जोड़ कर उसे खुश करता है; उसकी स्तुति करता है, कहता है कि यदि अमुक मेरी इच्छा पूरी हो जाय तो मैं १० ब्राह्मणों को भोजन कराऊँगा; यदि उसकी प्रार्थना का कुछ फल न हुआ तो वह उसी ईश्वर को गालियाँ तक देने लगता है।

ऐ मनुष्य! इतना अधर्म करते हुए भी तुझे दंड क्यों नहीं मिलता! कारण यह है कि समय बदला लेने का नहीं है। यह समझ कर ईश्वर की पूजा करना न छोड़ो कि वह हमें दंड देता है। ऐसा करने से तुम्हारा पागलपन साबित होगा, अपने अधर्म से दुःख तुम्हीं को मिलेगा, दूसरे को नहीं।

तुम कहते तो हो कि मैं परमेश्वर का पुत्र हूँ किन्तु उसका उपकार मानना भूल जाते हो और उसकी आराधना नहीं करते। विश्वास तो ऐसा ऊँचा और कृत्य ऐसा तुच्छ!

सच पूछिए तो मनुष्यप्राणी अनन्त विश्व में एक कण ही मात्र है;

किन्तु वह समझता है कि पृथ्वी और आकाश मेरे ही लिये बनाये गये हैं। उसका ख्याल है कि सारी प्रकृति मेरी भलाई करने में आनन्द पाती है।

वृक्षों और नावों की परछाईं पानी में हिलती है, किन्तु मूर्ख समझता है कि, निसर्गदेव मुझे प्रसन्न करने के लिये ऐसा कर रहे हैं। प्रकृति देवी अपना नियमित काम करती है, परन्तु मनुष्य समझता है वह सब मेरी आँखों को आनन्द देने के लिये कर रही है।

वह जब धूप लेने के लिये बैठता है तो समझता है कि सूर्य की किरणें मेरे ही लिये बनाई गई हैं और जब चाँदनी रात में बाहर घूमने के लिये निकलता है तो सोचता है कि चन्द्रमा मुझे प्रसन्न करने के लिये बनाया गया है।

ऐ मूर्ख ! इतना घमंड क्यों करता है ? याद रख, निसर्ग देव तेरे लिये काम नहीं कर रहा है। जाड़े और गरमी तेरे लिये नहीं बनाये गये हैं। मनुष्य सृष्टि की सृष्टि यदि न रहे तो भी उसमें परिवर्तन नहीं होने का। तू तो फिर उन असंख्यों में से एक है।

अपने को ऊँचा न समझो, क्योंकि देवदूत तो तुझ से भी अधिक ऊँचे हैं। अपने दूसरे भाइयों की उपेक्षा इसलिये न करो कि वे तुम से छोटे हैं, क्योंकि उनको भी तो परमेश्वर ने ही तुम्हारी तरह बनाया है।

यदि परमात्मा ने तुम्हें सुखी बनाया है तो पागलपन में आकर दूसरो को दुखी न करो। होशियार रहो, कहीं उलट कर फिर तुम्हारे ही पास न चला आवे। क्या वे हमारी ही तरह परमेश्वर की सेवा नहीं करते ? क्या उसने उन सबों के लिये नियम नहीं बनाये ? क्या उनकी रक्षा का उसे ख्याल नहीं है ? तो उनको दुखी करने करने का साहस तुम फिर क्यों कर सकते हो।

तीसरा खण्ड

स्वपर विघातक मानवी धर्म



पहला प्रकरण

लोभ

धन अधिक ध्यान देने योग्य वस्तु नहीं, इसलिये उसके उपार्जन करने के लिये एक दम तन्मय हो जाना उचित नहीं।

किसी वस्तु को अच्छी समझ कर यदि मनुष्य उसके पाने की इच्छा करता है तो वह इच्छा और उससे उपलब्ध आनन्द केवल कल्पनामात्र होते हैं। इसलिये गँवार लोगों का मत स्वीकार न करो; वस्तु के मूल्य की परीक्षा स्वयं करो, इस प्रकार मनुष्य सहसा लोभी नहीं हो सकता।

धन का अपरिमित लोभ आत्मा के लिये विष का काम करता है ! वह प्रत्येक सद्धर्म का नाश करता है। उसका आविर्भाव होते ही सारे गुण, ईमानदारी और स्वाभाविक मनोधर्म दूर हो जाते हैं।

लोभी मनुष्य पैसे के लिये अपने बच्चों तक को बेच देता है। उसके माता पिता चाहे मर जायँ, परन्तु वह पैसा नहीं खर्च करता। वह धन के सामने स्वाभिमान तक खोने के लिये तैयार रहता है। ढूँढ़ता है वह सुख और मिलता है उसे दुःख।

वह मनुष्य, जो धन के पीछे मन की शान्ति से हाथ धो बैठता है, इस उद्देश्य से भविष्य में उसके उपभोग करने में मुझे बड़ा आनन्द मिलेगा, उस मनुष्य के समान है जो घर सजाने का सामान खरीदने के लिये अपने घर ही को बेंच डालता है।

लोभी मनुष्य की आत्मा कृपण होती है। जो यह समझता है कि केवल धन ही सुख का साधन नहीं है, उसके अन्य दूसरे सुख के साधन

नष्ट होने से बचे रहते हैं। जो दरिद्रता को स्वाभाविक आपत्ति न समझ कर उससे भयभीत नहीं होता, वह उससे ध्यान हटाकर अपने को और आपत्तियों से बचाये रहता है।

अरे मूर्ख! धन की अपेक्षा सद्गुण क्या अधिक मूल्यवान नहीं होता? दरिद्रता से पाप क्या अधम नहीं है? संतोष करना और कोष बढ़ाना मनुष्य के हाथ में है। जो प्राणी संतोषी है वह उन पुरुषों के दुःखों को देखकर हँसता है जो तृष्णावश अधिक धन संचय करने की चिन्ता में घुला करते हैं।

क्या सुवर्ण ने अब तक लाखों के प्राण नष्ट नहीं किये ? क्या उसने अभी तक किसी का भला किया है ? तो फिर क्यों इच्छा करते हो कि मेरे पास यदि विपुल धन हो जाय तो मेरा नाम हो ?

क्या वे ही लोग बुद्धिमान नहीं हुए जिनके पास धन की मात्रा कम रही है ? क्या उन्हीं का ज्ञान सच्चा सुख नहीं है ? क्या निकृष्ट मनुष्यों ही के यहाँ धन की अधिकता नहीं पड़ती, और साथ ही क्या उनका अन्तिम काल दुःखमय नहीं होता ।

दरिद्री को अनेक वस्तुओं की लालसा रहती है; परन्तु लोभी को धन छोड़कर और किसी वस्तु की चाहना नहीं रहती ।

लोभी से किसी का भला नहीं हो सकता । वह दूसरों के साथ इतना निर्दयी नहीं होता जितना अपने साथ ।

परिश्रम के साथ द्रव्योपार्जन करो और उदारता के साथ उसे व्यय करो । दूसरों को सुखी करके जितना सुख मनुष्य को होता है उतना सुख उसे और कहीं नहीं मिलता ।

दूसरा प्रकरण

अतिव्यय

धन संचय करने से बढ़कर यदि कोई दूसरा और अधिक निकृष्ट व्यसन है तो निरर्थक बातों में उसका व्यय करना है ।

निसर्गदेव ने चीजों के व्यय करने का अधिकार सब को समान दिया है । जो आवश्यकता से अधिक व्यय करता है वह एक प्रकार से अपने गरीब भाइयों के अधिकारों पर हस्तक्षेप कर रहा है ।

जो अपना धन नष्ट करता है वह दूसरों के उपकार करने के साधन कम कर रहा है । वह धर्म करना नहीं चाहता और न उससे होने वाले सुख का अनुभव करना चाहता है ।

धन के अभाव से मनुष्य को इतना दुःख नहीं मिलता जितना दुःख धन की विपुलता से होता है। दरिद्र होने पर मनुष्य जितना आत्मसंयम कर सकता है उतना धनवान होने पर नहीं कर सकता।

दरिद्र होने पर केवल एक गुण की आवश्यकता है; और वह है सहिष्णुता: परन्तु धनियों को दान, धर्म, परमित्रता, परोपकार, दूरदर्शिता आदि अनेक गुणों की आवश्यकता है। यदि ये गुण उनमें न हों तो वे दोषी ठहराये जाते हैं। गरीबों को केवल अपनी ही आवश्यकताओं की चिन्ता करनी पड़ती है; किन्तु धनियों को दूसरों का भी ध्यान करना पड़ता है।

जो अपने द्रव्य को बुद्धिमत्ता से खर्च करता है वह अपने दुःख दरिद्र भी दूर कर रहा है, और जो उसका संचय करता है वह अपने लिए दुःख जमा कर रहा है।

अतिथि को यदि किसी बात की आवश्यकता पड़े तो उससे मुँह न फेरो। जिस बात की आवश्यकता तुम्हें है यदि उसी बात की आवश्यकता तुम्हारे भाई को पड़ जाय तो भी उसे देने में आना-कानी न करो। स्मरण रहे; अपने पास की वस्तु देकर दूसरे को सुखी करने में जितना आनन्द है उतना आनन्द उन लाखों रुपयों के रखने में नहीं है जिनका उचित उपयोग तुम्हें नहीं मालूम।

तीसरा प्रकरण

बदला

हानि पहुँचाने के विचार आते ही बदला लेने की इच्छा उत्पन्न होती है। सज्जनों के हृदय में दूसरों को पीड़ा पहुँचाने के विचार कभी नहीं आते और इसी कारण वे बदला लेने का ख्याल तक नहीं करते।

जब कि स्वयं दुःख ही ध्यान देने की बात नहीं है, तब फिर दुःख देने वाले की उपेक्षा क्यों न करनी चाहिये ? ऐसा न करना मानों अपने को मनुष्यत्व से गिराना है।

जो तुम्हें पीड़ा पहुँचाना चाहता है उससे अलग रहो। जो तुम्हारी शांति को भङ्ग करना चाहता है उसका साथ छोड़ दो। इससे केवल यही नहीं होगा कि तुम्हारी शांति ज्यों की त्यों बनी रहेगी, बल्कि बिना किसी निन्दनीय साधन का अवलम्ब लिये तुम्हारे प्रतिद्वन्दी को आप से आप बदला मिल जायगा।

जिस प्रकार तूफान और बिजली का प्रभाव सूर्य्य और तारों पर नहीं पड़ता, बल्कि वे स्वयं पत्थरों और वृक्षों पर टकरा कर शान्त होते हैं, उसी प्रकार हानि का प्रभाव महात्माओं के हृदय पर नहीं पड़ता, उलटकर वह उन्हीं लोगों पर पड़ता है जो हानि पहुँचाना चाहते हैं।

बदला लेने की इच्छा वे ही करते हैं जिनकी आत्मा क्षुद्र है और जिनकी आत्मा महान है वे उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते और बुराई करने वाले की भलाई करते हैं।

तुम बदला लेने की इच्छा क्यों करते हो ? किस उद्देश से बदला लेने का ख्याल तुम्हारे मस्तिष्क में नाचता रहता है ? इससे क्या तुम अपने शत्रु को दुःख देना चाहते हो ? परन्तु स्मरण रक्खो, शत्रु को दुःख पहुँचाने की अपेक्षा इससे पहिले तुम्हारे ही दिल को दुःख पहुँचेगा।

जिनके हृदय में बदला लेने की इच्छा उत्पन्न होती है उसके दिल को वह इच्छा पहले पीड़ित कर डालती है; और जिससे बदला लिया जाता है उसका दिल शांत रहता है।

बदला लेने की इच्छा से हृदय रोगी हो जाता है इसलिए बदला

लेना उचित नहीं। सृष्टि देवी ने उसे मनुष्य प्राणी के लिए नहीं बनाया है। जिसको स्वयं बहुत दुःख है उसे और अधिक दुःख की क्या आवश्यकता? अथवा दूसरे ने यदि दुःख का भार किसी मनुष्य के ऊपर लाद दिया है तो उसमें और हम अधिकता क्यों करें?

बदला लेने की इच्छा रखने वाले मनुष्य को पहले की पीड़ा से संतोष नहीं होता, और इसीलिए मानो वह उस दण्ड का भी अपने को भागी बना लेता है जो वस्तु दूसरे को मिलनी चाहिए। यही नहीं, किन्तु वह पुरुष, जिससे बदला लेना चाहता है, मौज करता है, और एक और नवीन दुःख को देखकर हँसता है।

बदला लेने का विचार बड़ा क्लेशकारक होता है, और जब कार्य में परिणत करते हैं तब वह बड़ा भयङ्कर हो जाता है। कुल्हाड़ी फेंकने वाला जहाँ उसे फेंकना चाहता है, वहाँ प्रायः वह नहीं गिरती। यह भी संभव है कि छिटक कर वह उसी का प्राणान्त कर दे।

इसी प्रकार शत्रु से बदला लेने में प्रायः बदला लेने वाले ही प्राण संकट में पड़ जाते हैं, वह अपने प्रतिद्वन्द्वी की एक आँख फोड़ने के समय अपनी दोनों आँखें फोड़ डालता है। यदि उसका मनोरथ सिद्ध न हुआ तो उसके लिये शोक करता है, और यदि फलीभूत हुआ तो उसके लिये पश्चात्ताप भी करता है।

इस प्रकार का बदला भी क्रोध से ही उत्पन्न होता है और इसमें कोई गौरव नहीं। गौरव तो इसमें है कि उसको हानि भी पहुँचे और तुम्हारा काम भी हो जाय।

कायरता ही हमसे हत्या कराती है। जो हत्या करता है वह डरता रहता है कि यदि शत्रु जीवित रहा तो वह कहीं बदला न ले। मृत्यु झगड़ों का अन्त कर देती है, इसमें कोई शङ्का नहीं, परन्तु इसमें कोई कीर्ति भी नहीं। हत्या करना शूरता नहीं है। यह तो सिर्फ अपना बचाव करना है।

किसी अपराध के लिये बदला लेने से बढ़कर कोई सुगम वस्तु नहीं, परन्तु साथ ही उसे क्षमा करने से बढ़कर कोई दूसरा उत्तम काम नहीं।

अपने मन को जीतने से बढ़कर कोई दूसरी जीत नहीं है। अपराध की अवहेलना करना ही अपराध का बदला लेना है।

जब तुम बदला लेने का विचार करते हो तो तुम स्वीकार करते हो कि हमारी हानि हुई; जब तुम शिकायत करते हो तब तुम कबूल करते हो कि शत्रु ने हमें हानि पहुँचाई, ऐसा करके क्या तुम अपने शत्रु के बल की प्रशंसा करना चाहते हो?

जो मालूम न पड़े वह हानि कैसी? जिसे हानि की कल्पना ही नहीं उसको बदला कैसा? हानि के सह लेने में अपमान न समझो। इससे बढ़कर शत्रु पर विजय प्राप्त करने का कोई दूसरा साधन नहीं है।

उपकार कर देने से अपकार करने वाले को लज्जा मालूम होती है। तुम्हारी आत्मा के बड़प्पन से डरकर वह हानि पहुँचाने का विचार भी न करेगा।

जितने अधिक अपराध हों उतना अधिक क्षमा प्रदान करना अत्युत्तम है और जितना न्याय बदला लेने में है उससे बढ़कर न्याय और गौरव उसको भूल जाने में है। क्या तुमको स्वयं अपने विषय में न्याया

धीश होने का अधिकार है ! क्या तुम स्वयं एक फरीक होते हुए निर्णय सुना सकते हो ! हमारा काम उचित है, अथवा अनुचित है, ऐसा स्वयं निर्णय करने के पहले देखो तो सही कि दूसरे तुम्हारे निर्णय को न्याय-संगत बताते हैं कि नहीं ।

प्रतिकार परायण पुरुष भयभीत होता है, इसलिए वे लोग उसका तिरस्कार करते हैं । परन्तु जिसके हृदय में क्षमा और दया है उसकी पूजा होती है । उसके कृत्यों की प्रशंसा हमेशा के लिए रह जाती है, और सारा जगत, प्रेम के साथ उसका नाम लेता है ।

चौथा प्रकरण

क्रूरता, द्वेष और मत्सर

इस ऊँचे पद पर चढ़ने के लिए जिसके पास साहस नहीं वही हत्या कर के विजय, और रुधिर बहा कर राज्य प्राप्त करता है ? जो सब से डरता है वह सबको मारता भी है। अत्याचारी अत्याचार क्यों करते हैं ? क्योंकि उन्हें भय लगा रहता है। जब तक कोई जीव जीवित है तब तक कुत्ता उससे आँख नहीं मिला सकता, जब वह मर जाता है तब वही कुत्ता उसका मृत शरीर खाता है। परन्तु शिकारी कुत्ता, जब तक वह जीवित है तभी तक उस पर वार करता है और जब वह मर जाता है तो कुछ नहीं बोलता।

देश के भीतर ही होने वाली लड़ाइयों में बड़ा रक्तपात होता है, क्योंकि लड़ने वाले लोग बड़े डरपोक होते हैं, गुप्त षड़यंत्र रचने वाले हत्यारे होते हैं; क्योंकि मृत्यु के समय सब मौन रहते हैं। हमारा कृत्य कहीं खुल न जाय, इस बात के लिए क्या वे डरते नहीं रहते ?

यदि तुम क्रूर नहीं होना चाहते तो मत्सरता से दूर रहो और यदि तुम चाहते हो कि हम निशाचरों की गणना से बचे रहें तो ईर्षा न करो।

प्रत्येक मनुष्य को हम दो दृष्टियों से देख सकते हैं। एक से तो वह हमें बहुत दुखदाई प्रतीत हो सकता है; और दूसरी से नहीं, यथा-शक्ति उसी दृष्टि से उसे देखो जिससे वह तुम्हें दुखदाई मालूम न हो। यदि वह सुखदाई मालूम होगा तो तुम भी उसे दुःख न पहुँचाओगे।

ऐसी कौन सी बात है जिसको मनुष्य कल्याणकारी न बना सकता हो ? जिससे हमको अधिक क्रोध आता है उससे घृणा की अपेक्षा शिकायत करने का भाग अधिक रहता है। जिसकी शिकायत हम करते हैं उससे हमसे मेल हो सकता है, परन्तु जो हमारा तिरस्कार करता है उसको मारने के अतिरिक्त हमारा समाधान और किसी प्रकार नहीं होता।

यदि तुम्हारे लाभ होने में कोई विघ्न डाल दे तो क्रोध से भभक न उठो। ऐसा करने से तुम्हारी बुद्धि नष्ट होगी, जिसकी हानि उस लाभ

से कहीं अधिक है। यदि तुम्हारा दुपट्टा कोई चुरा ले जाय तो क्या तुम अपना अंग भी फाड़ डालोगे ?

जब तुम दूसरे की पदवियों को देखकर ईर्षा करते हो, जब दूसरों के गौरव को देखकर तुम्हारे हृदय में शूल होने लगता है, उस समय यह सोचो कि उन्हें ये सब कैसे मिले। यह सब मालूम हो जायगा तब तुम्हारी ईर्षा दया रूप में परिवर्तित हो जायगी।

कोई वैभव यदि उसी मूल्य पर तुम्हें दी जाय, तो तुम यदि बुद्धिमान हो, तो उसे जरूर अस्वीकार कर दोगे। पदवियों का मोल क्या है ? चापलूसी। ऐसी दशा में पदवी देने वाले का दास बने बिना मनुष्य वैभव (पदवी) किस प्रकार प्राप्त कर सकता है ?

दूसरों की स्वतंत्रता अपहरण करने के लिए क्या तुम अपनी स्वतन्त्रता खो दोगे ? अथवा किसी ने यदि ऐसा किया हो तो क्या उसकी ईर्षा करोगे ?

पाँचवाँ प्रकरण

हृदय का क्षोभ (उदासीनता)

आनंदी जीव को देखकर दुःखी के होठों में मुस्कराहट आ सकती है। परन्तु उदासीन की उदासीनता को देखकर आनन्दी मनुष्य का भी आनन्द लोप हो जाता है।

उदासीनता का कारण क्या है ? आत्मिक निर्बलता। उसकी वृद्ध क्यों कर होती है ? निरुत्साह के कारण उसका सामना करने के लिए तैयार हो, वह हानि पहुँचाये बिना आप से आप भाग जायगी।

वह तुम्हारी जाति भर की वैरिणी है। इसलिये उसे अपने हृदय से निकाल दो। वह तुम्हारे जीवन के सुखों को विष देकर मार डालने वाली है, इसलिए उसे अपने घर में न घुसने दो।

एक तिनके की हानि हो जाने पर उदासीन मनुष्य को मालूम होता है कि हमारी सारी संपत्ति नष्ट हो गई। उदासीनता तुम्हारी आत्मा को थोड़ी-थोड़ी बातों पर अशान्त करती है और महत्वपूर्ण बातों पर उसे प्रवृत्ति नहीं होने देती।

वह तुम्हारे गुणों के ऊपर आलस का परदा डाल देती है। वह उन गुणों को छिपा देती है जिनसे दूसरे तुम्हारा सत्कार कर सकते हैं। यह उन्हें दबा देती है। उस समय तुम्हारा काम है कि उन्हें फिर विकसित करो।

वह अरिष्टों को तुम्हारे लिए आमन्त्रित करती है। वह तुम्हारे हाथों को बाँध देती है। यदि तुम चाहते हो कि कायरता हम में न रहे, यदि तुम चाहते हो कि कमीनापन हम में से निकल जाय, यदि तुम्हारी इच्छा है कि अन्याय को हमारे हृदय में स्थान न मिले, तो उदासीनता के वशीभूत न होओ।

स्मरण रहे कि कहीं बुद्धिमता के वेष में वह तुम्हें धोखा न दे दे। धर्म तुम्हारे उत्पन्नकर्ता की स्तुति करता है इसलिए उसे उदासीनता की छाया

से न दब जाने दो। उत्साह के साथ रहने से ही तुम प्रसन्न चित्त रह सकते हो इसलिये उदासीन रहना छोड़ दो।

मनुष्य को दुःखी क्यों होना चाहिये ? उसे आनन्द मनाना क्यों छोड़ देना चाहिये, जब उसके सब कारण उसमें विद्यमान हैं ? दुःखी होना क्या दुःख को और मोल लेना नहीं है ?

भाड़े पर बुलाये हुए मातम करने वाले जिस प्रकार दुःखी देख पड़ते हैं अथवा पैसा मिलने के कारण वे जिस प्रकार आँसू बहाने लगते हैं उसी प्रकार बहुत से मनुष्य भी उदासीनता के कारण आँसू बहाने लगते हैं, यद्यपि इस उदासीनता का कोई कारण नहीं होता।

किसी वस्तु से कोई दुःखी हो सो बात नहीं। क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि उससे एक मनुष्य दुःखी होता है उसी से दूसरे सुखी होते हैं।

पाँचवाँ प्रकरण

हृदय का क्षोभ (उदासीनता)

आनंदी जीव को देखकर दुःखी के होठों में मुस्कराहट आ सकती है। परन्तु उदासीन की उदासीनता को देखकर आनन्दी मनुष्य का भी आनन्द लोप हो जाता है।

उदासीनता का कारण क्या है ? आत्मिक निर्बलता। उसकी वृद्ध क्यों कर होती है ? निरुत्साह के कारण उसका सामना करने के लिए तैयार हो, वह हानि पहुँचाये बिना आप से आप भाग जायगी।

वह तुम्हारी जाति भर की वैरिणी है। इसलिये उसे अपने हृदय से निकाल दो। वह तुम्हारे जीवन के सुखों को विष देकर मार डालने वाली है, इसलिए उसे अपने घर में न घुसने दो।

एक तिनके की हानि हो जाने पर उदासीन मनुष्य को मालूम होता है कि हमारी सारी संपत्ति नष्ट हो गई। उदासीनता तुम्हारी आत्मा को थोड़ी-थोड़ी बातों पर अशान्त करती है और महत्वपूर्ण बातों पर उसे प्रवृत्ति नहीं होने देती।

वह तुम्हारे गुणों के ऊपर आलस का परदा डाल देती है। वह उन गुणों को छिपा देती है जिनसे दूसरे तुम्हारा सत्कार कर सकते हैं। यह उन्हें दबा देती है। उस समय तुम्हारा काम है कि उन्हें फिर विकसित करो।

वह अरिष्टों को तुम्हारे लिए आमन्त्रित करती है। वह तुम्हारे हाथों को बाँध देती है। यदि तुम चाहते हो कि कायरता हम में न रहे, यदि तुम चाहते हो कि कमीनापन हम में से निकल जाय, यदि तुम्हारी इच्छा है कि अन्याय को हमारे हृदय में स्थान न मिले, तो उदासीनता के वशीभूत न होओ।

स्मरण रहे कि कहीं बुद्धिमता के वेष में वह तुम्हें धोखा न दे दे। धर्म तुम्हारे उत्पन्नकर्ता की स्तुति करता है इसलिए उसे उदासीनता की छाया

से न ढक जाने दो। उत्साह के साथ रहने से ही तुम प्रसन्न चित्त रह सकते हो इसलिये उदासीन रहना छोड़ दो।

मनुष्य को दुःखी क्यों होना चाहिये ? उसे आनन्द मनाना क्यों छोड़ देना चाहिये, जब उसके सब कारण उसमें विद्यमान हैं ? दुःखी होना क्या दुःख को और मोल लेना नहीं है ?

भाड़े पर बुलाये हुए मातम करने वाले जिस प्रकार दुःखी देख पड़ते हैं अथवा पैसा मिलने के कारण वे जिस प्रकार आँसू बहाने लगते हैं उसी प्रकार बहुत से मनुष्य भी उदासीनता के कारण आँसू बहाने लगते हैं, यद्यपि इस उदासीनता का कोई कारण नहीं होता।

किसी वस्तु से कोई दुःखी हो सो बात नहीं। क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि उससे एक मनुष्य दुःखी होता है उसी से दूसरे सुखी होते हैं।

किसी मनुष्य से पूछो तो सही कि क्यों भाई शोक करने से क्या तुम्हारी दशा कुछ सुधर जाती है ! वह स्वयं कहेगा कि नहीं, शोक करना सचमुच मूर्खता है। वे उस पुरुष की प्रशंसा करेंगे जो अपने संकटों को धीरता और साहस पूर्वक सह लेते हैं परन्तु अपनी बार बावले बन जाते हैं। शोक की बात है। ऐसे मनुष्यों को चाहिये कि जिनकी वे प्रशंसा करते हैं उनका अनुकरण करें।

शोक करना निसर्ग देव के विरुद्ध है। क्योंकि इससे नैसर्गिक काम में बाधा पड़ती है। जिसको निसर्ग देव रोचक बनाते हैं उसको शोक देवी नीरस बना देती है।

जिस प्रकार प्रचण्ड तूफ़ान के सामने वृक्ष गिर पड़ता है और फिर उठने का साहस नहीं करता उसी प्रकार निर्बल आत्मा वाले मनुष्य का हृदय बोझ से झुक जाता है फिर नहीं उठता।

जिस प्रकार पहाड़ पर से नीचे आने वाला पानी बरफ को भी बहा कर नीचे ले आता है उसी प्रकार गालों पर की सुन्दरता आँसुओं से धुल

जाती है। न तो पहाड़ पर की बरफ लौटकर फिर से आ सकती है और न गालों पर की वह सुन्दरता ही अपने स्थान को लौट सकती है।

जिस प्रकार तेजाब में मोती डालने से पहिले वह धूमिल हो जाती है और फिर गल जाती है उसी प्रकार हृदय की उदासीनता प्रथम मनुष्य पर अपना काम करती है और फिर उसे हड़प कर जाती है।

सड़कों पर विश्राम लेने वाले स्थान पर भी उदासीनता दिखलाई पड़ेगी। ऐसा कौन सा स्थान है जहां उसका निवास न हो किन्तु उससे बचकर निकल भागने का प्रयत्न करना चाहिये, यह तो मनुष्य के हाथ में है। देखो तो किस प्रकार उदासीन मनुष्य उस फूल की तरह सर नीचे किये रहता है, जिसकी जड़ काट दी गई है। वह किस प्रकार अपनी आँखें जमीन की ओर गाड़े रहता है। परन्तु ऐसी अवस्था से सिवाय रोने के और क्या लाभ।

उदासीन मनुष्य का मुँह क्या कभी खुलता है? क्या उससे हृदय में समाज के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है? क्या उसकी विचार शक्ति अपना अपना काम करती है। उससे इन सब का कारण पूछो तो कहेगा कुछ नहीं। भाई यह उदासीनता कैसे आई, कहेगा, ऐसे ही कोई कारण नहीं है।

धीरे धीरे उसकी शक्ति का ह्रास होता जाता है और अन्त में वह कराल काल का ग्रास बन जाता है। और फिर कोई पूछता भी नहीं कि अमुक मनुष्य का क्या हुआ।

तेरे बुद्धि है और तू देखता नहीं। तुम में ईश्वर की भक्ति है और तू अपनी भूल नहीं समझता।

ईश्वर ने बड़ी दया के साथ मनुष्य को पैदा किया है। यदि उसे तुझे सुखी रखने की इच्छा न होती तो वह उत्पन्न ही काहे को करता? तुम उसके नियमों का उल्लंघन करने का प्रयत्न क्यों करते हो।

जब तक तुम निर्दोषी हो कर अत्यन्त सुखी हो तब तक तुम ईश्वर का बड़ा मान कर रहे हो। और जब तुम असन्तुष्ट हो तुम उसकी

अवहेलना करते हो। क्या उसने सब वस्तुओं को परिवर्तनशील नहीं बनाया है ? फिर जब उनमें परिवर्तन होता है तो क्यों शोक करते हो ?

यदि हमें निसर्ग देव के नियम मालूम हैं तो हम शिकायत क्यों करते हैं ? यदि नहीं मालूम तो सिवाय अपने अन्धेपन के दोष और दें किसे ?

संसार के नियम तुम नहीं बना सकते। जिस रूप में तुम नियमों को देखते हो उसी रूप में उनका पालन करना तुम्हारा पहला काम है। यदि वे दुःख देते हैं तो दुःखी हो कर तुम स्वयं अपने दुःख को अधिक बढ़ा रहे हो।

बाहरी लुभाव में न फँसो और न यह ख्याल करो कि शोक से दुर्भाग्य का घाव भर जाता है। शोक दवा की जगह विष का काम करता है। कहता तो है कि मैं तेरे छाती से तीर निकाल रहा हूँ, किन्तु उल्टे वह उसे घुसेड़ता जाता है।

उदासीनता के कारण तुममें और तुम्हारे मित्र में अनबन हो जाती है। ईर्षा के कारण तुम खुल कर बातचीत नहीं कर सकते ! कोने में छिपे पड़े रहते हो, लोगों के सामने निकलने में झेंपते हो। दुर्भाग्य के आघात सहन कर लेना तुम्हारा स्वाभाविक धर्म नहीं और तुम्हारी बुद्धि तुमसे कहती है कि तुम ऐसा करो किन्तु वीरता के साथ आपत्ति का सामना करना तुम्हारा मुख्य स्वाभाविक धर्म है। और साथ ही साथ इस बात का अनुभव करना भी तुम्हारा कर्तव्य है कि वीरता हम में वर्तमान है।

सम्भव है कि आँसू आँखों से गिर पड़ें, परन्तु सद्गुण नष्ट न होने पावे। आँसू बहाने का कारण मिल सकता है; परन्तु साथ ही यह भी स्मरण रहे कि अधिक आँसू न बहने पावे।

आंसुओं के प्रवाह से दुःख की मात्रा नहीं ज्ञात हो सकती। जिस

प्रकार हद दरजे का आनन्द कोई नहीं जान सकता, उसी प्रकार हद दरजे का शोक भी किसी को नहीं मालूम हो सकता है।

आत्मा को दुर्बल कौन करता है ? उसका उत्साह कौन अपहरण करता है; महत्कार्य्यों में विघ्न कौन डालता है। और सद्गुणों को नष्ट कौन करता है ? शोक, और कोई नहीं।

इसलिये जिस शोक से कोई लाभ होने की सम्भावना नहीं उसमें क्यों पड़ते हो ? और जिसका मूल ही अनिष्टकर है उसमें उत्तम उत्तम साधनों का बलिदान क्यों करते हो।

चौथा खंड

मनुष्य को अपनी जाति वालों से मिलनेवाले लाभ



पहला प्रकरण

कुलीनता और प्रतिष्ठा

कुलीनता आत्मा को छोड़कर अन्यत्र वास नहीं करती; और सद्‌गुणों के अतिरिक्त कहीं प्रतिष्ठा नहीं मिलती। पाप कर्म (कुटिल नीति) द्वारा हम राजाओं के कृपापात्र बन सकते हैं; द्रव्य खर्च करके बड़े-बड़े पद हम उपलब्ध कर सकते हैं; परन्तु इन साधनों के द्वारा प्राप्त की हुई प्रतिष्ठा सच्ची प्रतिष्ठा नहीं है। पाप कर्म द्वारा न तो मनुष्य कुछ तेजस्वी बन सकता है, और न द्रव्य द्वारा कुलीन बन सकता है।

जब मनुष्य को उसके सद्‌गुणों के कारण पद मिलते हैं; जब देश-सेवा सच्ची करने से सर्वत्र उसका मान होता है, तभी देने वाले और पाने वाले दोनों की प्रतिष्ठा होती है और संसार का लाभ होता है।

अब बतलाओ तो सही कि तुम प्रतिष्ठा किस प्रकार संपादन करना चाहते हो, धूर्तता से अथवा सद्‌गुणों से ?

जब किसी पराक्रमी पुरुष के गुण उसके बाल बच्चों में उतरते हैं, तभी उसके पद उनको शोभा देते हैं। परन्तु जब पद विभूषित मनुष्य योग्य किन्तु पद रहित मनुष्य से बिलकुल भिन्न होता है तो क्या जनता पदविभूषित मनुष्य को मान की दृष्टि से देखती है ?

पैतृक प्रतिष्ठा सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है, किन्तु लोग प्रशंसा उसी की करते हैं जिसने उसे पहिले उपार्जित किया था। जिस पुरुष में स्वयं तो कोई गुण नहीं है, किन्तु अपने पूर्वजों के उत्तम कर्मों के बहाने

प्रतिष्ठा चाहता है, वह उस चोर के सदृश्य है, जो चोरी करके देवालय में आश्रय लेने का प्रयत्न करता है ताकि उसके दुर्गुण सब छिप जायँ।

यदि अन्धे के माता पिता आँखों से देख सकते थे तो अन्धे को क्या लाभ ? यदि गूँगे के पूर्वज स्पष्टतया बातचीत कर सकते थे तो गूँगे को क्या फायदा ? उसी प्रकार यदि नीच मनुष्य के बाप दादे कुलीन रहे हों तो इससे नीच मनुष्य की कौन सी प्रतिष्ठा ?

सच्ची प्रतिष्ठा उसी की होगी जिसका मन सद्गुणों की ओर प्रवृत्त है, चाहे वह पदवियों से विभूषित न हो, किन्तु लोग उसका सत्कार अवश्य करेंगे।

ऐसा ही पुरुष तो वास्तविक प्रतिष्ठा उपार्जित करेगा और दूसरे तो उससे पावेंगे। ऐसे ही नर-रत्नों से तुम प्रतिष्ठित होने का दम भर सकते हो।

जिस प्रकार परछाइँ वस्तु के पीछे-पीछे चलती है उसी तरह सच्ची प्रतिष्ठा सद्गुणों का अनुसरण करती है।

यह न ख्याल करो कि साहस के काम करने अथवा जीवन को धोखे में डालने से प्रतिष्ठा मिलती है। प्रतिष्ठा कुछ काम से नहीं मिलती। प्रतिष्ठा मिलती है कार्य्य करने की विधि से।

राष्ट्र रूपी जहाज सँभालने का भार सब पर ही नहीं रहता अथवा सेनाओं का आधिपत्य प्रत्येक को नहीं मिलता। इसलिए जो काम तुम्हें सौंपा जाय उसे जी जान से करो। लोग तुम्हारी प्रशंसा सहज ही में करने लगेंगे!

"कीर्ति मिलने के लिए विघ्नों पर जय प्राप्त करना पड़ेगा और बड़े-बड़े कष्टों का सामना पड़ेगा"—ऐसा न कहो। जो स्त्री सती है उसकी कीर्ति क्या आप से आ नहीं होती ? जो मनुष्य ईमानदार हैं उनका सर्वत्र क्या मान नहीं होता है।

कीर्ति की लालसा प्रबल होती है; प्रतिष्ठा की इच्छा बलवती होती है। जिसने इन्हें दिया उसका उद्देश्य इन के देने का महान था। जिस समय समाज के हित के लिए साहसपूर्ण काम करने की आवश्यकता है, जब स्वदेश के लिये प्राणों को संकट में डालना पड़ता है; उस समय महत्वाकांक्षा के अतिरिक्त सद्गुणों को और कौन उत्तेजित करता है।

महात्माओं को कोरी पदवियों से प्रसन्नता नहीं होती। उन्हें प्रसन्नता होती है इस ऊहापोह से कि हम इन पदवियों के योग्य हैं, अथवा नहीं।

"इस मनुष्य की मूर्ति किसने बनाई" ऐसा कहने की अपेक्षा क्या यह कहना उत्तम नहीं है "कि अमुक मनुष्य की मूर्ति क्यों नहीं बनाई गई?"

महत्वाकांक्षी भीड़-भड़क्के में प्रथम रहेगा। आगे को ठेलता चलेगा, पीछे को देखेगा भी नहीं। सहस्रों मनुष्यों पर विजय प्राप्त करने से उसे इतना सुख न होगा जितना खेद उसे अपने से एक भी अधिक योग्य पुरुष को देखकर होगा।

महत्वाकांक्षा का बीज प्रत्येक मनुष्य में होता है, परन्तु सब में इसका विकास नहीं होता। किसी जगह पर तो उसे भय दबा देता है और अनेक स्थानों में उसे विनय से दबना पड़ता है। महत्वाकांक्षा आत्मा का आन्तरिक वस्त्र है। जड़ देह से सम्बन्ध होने के साथ ही उसका आविर्भाव होता है और उससे सम्बन्ध टूटने के पहले उसका विनाश होता है। यदि तुम महत्वाकांक्षा का उचित उपयोग करोगे तो तुम्हारा सत्कार किया जायगा; और यदि उसका दुरुपयोग करोगे तो तुम्हारी अपकीर्ति होगी; और तुम्हारा नाश हो जायगा।

विश्वासघातकों के हृदय में महत्वाकांक्षा छिपी रहती है; दाम्भिकता उसकी ओट में रहती और मायावीपन चटक मटक बातों से उसका मान बढ़ाता है, किन्तु अन्त में लोग उसकी असलियत समझ जाते हैं।

जो वास्तव में सद्गुणी है वह सद्गुण को सद्गुण समझ कर उस पर प्रेम करता है और उस महत्वाकांक्षा से घृणा करता है जिससे प्रशंसा मिले। यदि दूसरों की प्रशंसा से सद्गुणी मनुष्य सुखी होता तो उसकी स्थिति कितनी शोचनीय हुई होती परन्तु ऐसा न हो। वह फल की इच्छा नहीं करता और जितनी योग्यता उसमें है उससे बढ़कर पुरस्कार नहीं चाहता।

सूर्य्य ज्यों २ ऊपर चढ़ता है साया त्यों-त्यों कम होती जाती है, उसी प्रकार जितनी अधिक मात्रा सद्गुण की मनुष्य में होती है उतनी ही कम भूख उसे प्रशंसा की रहती है। तथापि उसकी योग्यता के अनुसार जितना मान उसे मिलना चाहिये, उतना अवश्य मिलता है।

कीर्ति परछाईं की तरह अपने पीछा करने वाले से दूर भागती है परन्तु जो उसकी ओर से मुँह फेर लेता है उसके पीछे-पीछे लगी रहती है; यदि बिना सद्गुण के कीर्ति पाने की इच्छा करोगे तो न मिलेगी; परन्तु यदि उसमें सद्गुण विद्यमान है तो चाहे तुम एक कोने में छिपे रहो तब भी वहाँ वह तुम्हारा साथ नहीं छोड़ेगी।

इसलिये जिससे कीर्ति हो उसी को पकड़ो और जो उचित और न्यायपूर्ण है उसी को करो। इस प्रकार अन्तःकरण की संतुष्टि से जो हर्ष प्राप्त होगा वह उस हर्ष से कहीं बढ़कर होगा, जो तुम्हारी वास्तविक योग्यता को न जानने वाले लाखों मनुष्य की झूठी प्रशंसा सुनने से हो सकता है।

दूसरा प्रकरण

ज्ञान और विज्ञान

अपने उत्पन्नकर्त्ता की सब वस्तुओं का अध्ययन करना ही मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है जिसे प्रकृति की प्रत्येक बात में आनन्द मिलता

है उसे परमात्मा के अस्तित्व में शंका नहीं होती। वह उन्हीं वस्तुओं में गदगद होता हुआ उसकी आराधना करता है।

सदैव उसका मन ईश्वर की ओर लगा रहता है, और उसका जीवन भक्तिपूर्ण होता है। जब वह आँख उठा कर ऊपर की ओर देखता है तो उसे क्या आकाश चमत्कारों से भरा हुआ नहीं दिखलाई पड़ता और जब वह पृथ्वी की ओर देखता है तो छोटे छोटे कीड़े मकोड़े उससे दया संकेत करते हुए नहीं देख पड़ते कि परमात्मा को छोड़ कर हमें और कौन बना सकता है।

सब ग्रह अपने अपने मार्ग में घूमते हैं। सूर्य्य अपनी जगह पर स्थिर रहता है। पुच्छल तारा वायु मण्डल में घूम कर अपने स्थान पर फिर से आ जाता है। ऐ मनुष्य, ईश्वर को छोड़ कर इन्हें और कौन बना सकता है? सिवाय उस सर्वन्यायी परमात्मा के उनको नियम के बन्धन से और कौन जकड़ सकता है?

अहा! ये कितने चमकीले हैं और इनकी चमक न्यून नहीं होती। वे कितनी तेजी से घूमते हैं, किन्तु एक दूसरे से टकराते नहीं।

पृथ्वी की ओर देखो और उसके उद्भिज पदार्थों पर विचार करो। उसके उदर का निरीक्षण करो और देखो कि उसमें क्या है। इन सब से क्या ईश्वर की सत्ता प्रगट नहीं होती?

घास कौन उत्पन्न करता है? उसे समय-समय पर कौन सींचता है। बैल उसे खाते हैं। घोड़े और गायें उससे पेट भरती हैं। भेड़ और बकरियों को घास पात कौन देता है?

बोये हुए अन्न की वृद्धि कौन करता है? एक मुट्ठी अन्न से सौ मुट्ठी अन्न कौन पैदा करता है? अंगूर जैतूनादि आदि फलों को प्रत्येक ऋतु में कौन पकाता है?

क्षुद्र मक्खी क्या आप से आप उत्पन्न हुई। क्या तू अपने को

परमात्मा समझता है ? यदि समझता है तो तू भी उसी की तरह मक्खियाँ उत्पन्न कर ।

पशु समझते हैं, हम जीवित हैं, परन्तु इस पर वे आश्चर्य नहीं करते । उन्हें जीवित रहने में आनन्द मिलता है । परन्तु वे ख्याल नहीं करते कि इस जीवन का कभी अन्त होगा । प्रत्येक प्राणी अपना २ काम परम्परा से करते हैं और हजारों पीढ़ियाँ गुजर जाती हैं किन्तु जाति लुप्त नहीं होती ।

परमात्मा की सत्ता, जो छोटी २ बातों में दिखलाई पड़ती है, वही बड़ी २ बातों में भी देखने में आती है । तेरा कर्तव्य है कि तू अपनी आँखों को उसके जानने में लगा और मस्तिष्क को उसके चमत्कार की परीक्षा में खर्च कर ।

प्रत्येक वस्तु की बनावट में परमात्मा का सामर्थ्य और उसकी दया देखने में आती है । प्रत्येक वस्तु की बनावट में उसकी नीति और सुजनता भी समान होती है ।

संसार के प्रत्येक प्राणी को सुख मिलने के भिन्न २ साधन हैं । वे एक दूसरे की ईर्षा नहीं करते ।

अब भला तुम्हीं बतलाओ कि भाषा के शब्दों में ज्ञान है. अथवा परमात्मा निर्मित वस्तुओं के निरीक्षण में । उत्तर यही देना होगा कि प्रकृति सौन्दर्य के निरीक्षण में जितना ज्ञान है उतना दूसरी वस्तुओं में नहीं है ।

जब तुमने घर बना लिया तो उसका उपयोग करना सीखो । पृथ्वी माता जितने पदार्थ उत्पन्न करती हैं वे सब तेरे भले के लिये हैं । अन्न तेरे खाने के लिये और जड़ी बूटियाँ तेरे रोगों को दूर करने के लिये उत्पन्न की गई हैं ।

अब बताओ कि चतुर कौन है ? वह जो परमात्मा की सृष्टि का ज्ञान रखता है; और बुद्धिमान कौन है ? जो उस पर विचार करता है । जिस

शास्त्र की उपयोगिता बढ़ चढ़ी है, जिस ज्ञान में अभिमान उत्पन्न होने की शंका है, तुम्हारा कर्तव्य है कि स्वयं उसे पहिले संपादित करो। और फिर अपने पड़ोसियों को सिखलाओ, ताकि उनका भला हो।

जीना और मरना, हुकूमत करना और आज्ञा पालना, काम करना और उसका फल भोगना, इत्यादि बातों के विषय में भी तुम्हारा ध्यान आकर्षित होना चाहिये। नीति यह सब तुम्हें सिखा देगी, "जीवन की उपयोगिता" इन बातों में तुम्हारी सहायता करेगी।

स्मरण रक्खो, ये सब तुम्हारे हृदय पटल पर लिखे हुए हैं। आवश्यकता केवल इतनी ही है कि तुम्हें उनकी याद भर पड़ जाय। याद आना भी कोई कठिन नहीं है। मन को एकाग्र करो, बस तुम उन्हें स्मरण में ला सकोगे।

अन्य सर्व शास्त्र व्यर्थ हैं, अन्य सारा ज्ञान कपोलकल्पित है। मानवी जीवन में उनकी कोई आवश्यकता नहीं। उनसे मनुष्य कुछ अधिक नेक और ईमानदार नहीं हो सकता।

ईश्वर की भक्ति और सजातीय प्राणियों के प्रेम ये ही क्या तुम्हारे मुख्य कर्तव्य नहीं हैं? बिना ईश्वर की सृष्टि का निरीक्षण किये उस पर तुम्हारी भक्ति किस प्रकार हो सकती है? और पराधीनता के ज्ञान बिना सजातीय लोगों के साथ प्रेम कैसे हो सकेगा।



पांचवां खण्ड

स्वाभाविक योगायोग

पहला प्रकरण

संपत्काल और विपत्काल

उत्कर्ष होने पर मर्यादा से अधिक हर्ष में न आओ और विपत्काल आने पर अपनी आत्मा को शोक के गड्ढे में न ढकेलो। संपत्काल का सुख चिरस्थायी नहीं है, इसलिये उस पर भरोसा न करो। और विपत्काल की दृष्टि हमेशा वक्र नहीं रहती इसलिये घबड़ाना छोड़कर धैर्य के साथ आशा को स्थिर रखो।

विपत्ति काल में धैर्य रखना जितना कठिन है, संपत्काल में संयमी बनना उतनी ही बुद्धिमानी है। संपत्काल और विपत्काल तुम्हारी आत्मिक दृढ़ता परखने की कसौटियाँ हैं। इनको छोड़कर और किसी प्रकार तुम्हारे आत्मा की परीक्षा नहीं हो सकती है। इसलिये जब इनका आगमन हो तब बड़ी सावधानी से काम लो।

संपत्काल को तो जरा देखो। कैसे मजे में चटुकारी करके तुम्हें अपने पंजे में ले आता है, और किस प्रकार धीरे-धीरे तुम्हारी शक्ति और तुम्हारे उत्साह का अपहरण करता है।

माना कि तुम संकट में दृढ़ रहे हो; माना कि विपत्ति में तुम अचल रहे हो। तब भी अपनी शक्ति को इस ख्याल से कि तुम्हें अब उसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी, घटने न दो।

हमारी आपत्ति को देखकर हमारे शत्रुओं का भी दिल पसीज उठता है, और हमारी सफलता और सुख को देखकर हमारे मित्र भी हम से ईर्षा कर सकते हैं!

सत्कृत्यों की जड़ आपत्ति ही है। आपत्ति शौर्य्य और धैर्य्य की धात्री है। जिसके पास माल भरा है क्या वह और अधिक पाने के लिये अपनी जान को खतरे में डालेगा।

सच्चा सद्गुणी मनुष्य परिस्थिति के अनुसार काम करता है। परन्तु जब तक उसके ऊपर आपत्ति न आवे तब तक उसका यह गुण सर्व-साधारण को मालूम नहीं होता।

आपत्काल में मनुष्य को ज्ञात होता है कि हमारे मित्र पैसे के साथी थे। उन्होंने अब मुझे छोड़ दिया है। आपत्काल में वह समझता है, मेरी सब आशाएँ केवल मुझी पर आश्रित हैं। उसी समय वह वीरता के साथ कठिनाइयों का सामना करता है, और वे उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं।

सम्पत्काल में वह समझता है कि मैं सुरक्षित हूँ, और मेरे मित्र मुझे प्यार कर रहे हैं। संपत्काल में वह बेपरवाह हो जाता है। संपत्काल में वह आगामी आपत्ति को नहीं देखता। और सम्पत्काल ही में वह दूसरों पर पूर्ण भरोसा करता है, और अन्त में उन्हीं से धोखा खाता है।

आपत्काल में मनुष्य भला बुरा सोच सकता है परन्तु संपत्काल में उसकी बुद्धि नहीं काम करती। इसलिए आपत्काल अच्छा है, जो मनुष्य को सन्तोष का पाठ पढ़ा सकता है, परन्तु संपत्काल अच्छा नहीं है जिसके वशीभूत होकर मनुष्य आपत्काल आने पर एक दम घबड़ा जाता है; और फिर उसी में उसकी मृत्यु हो जाती है।

किसी बात का अतिरेक होने पर हमारे मनोविकार हम पर हुकूमत करने लगते हैं। सम्भव बुद्धिमत्ता का चिह्न है।

सारे जीवन सादगी के साथ रहो। हर एक दशा में संतोष रक्खो। इससे प्रत्येक समय, प्रत्येक बात से तुम्हारा लाभ होगा; और लोग तुम्हारी प्रशंसा करेंगे।

बुद्धिमान प्रत्येक वस्तु से अपना लाभ ढूँढ़ निकालता है। और

भाग्य के परिवर्तनों को एक दृष्टि से देखता है; सुख दुःख पर समान अधिकार रखता है; और कभी अपने नियम से विचलित नहीं होता।

न तो संपत्काल में शेखी मारो; और न आपत्काल में निराश होओ। संकट को न तो बुलाओ और न उसके आने पर मुँह छिपाते फिरो। जो तुम्हारे साथ हमेशा रहने वाला नहीं है उससे डरते क्यों हो?

आपत्ति मे फँस कर आशा को न छोड़ो; और उत्कर्ष होने पर बुद्धिमत्ता की तिलांजली न दो। जिसके फल के प्राप्त होने में शङ्का होगी उसकी सिद्धि नहीं हो सकती। और जो सामने गड्ढों को नहीं देखेगा उसका विनाश अवश्य होगा।

जो कहता है कि स्मृद्धि ही में मेरा कल्याण है, उसी में मुझे सच्चा सुख मिल सकता है, वह एक प्रकार से अपने जहाज को, बालू की सतह पर लक्कड़ डालकर, खड़ा कर रहा है, जिसको ज्वारभाटा बहा ले जाता है।

जिस प्रकार पर्वत से निकल कर समुद्र में जाकर मिलने वाला जलप्रवाह नदी रूप में मार्ग से खेतों में होकर जाता है, कहीं ठहरता नहीं, उसी प्रकार भावी प्रत्येक के पास दौरा करती है, किन्तु ठहरती नहीं; क्योंकि उसकी गति अविरत और हवा की तरह चंचल है। इसलिये तुम उसे पकड़ नहीं सकते। जब तुम्हारे ऊपर उसकी कृपा दृष्टि होती है तब तुम्हें सुख होता है, परन्तु जब तुम उसका स्वागत करना चाहते हो तब वह दूसरों के पास निकल भागती है।

दूसरा प्रकरण

क्लेश और व्याधि

शरीर की व्याधि का प्रभाव आत्मा पर भी पड़ा करता है। एक को आरोग्यता मिले विना दूसरे को आरोग्यता नहीं मिल सकती।

व्याधियों में क्लेश का नम्बर सबसे बढ़ा चढ़ा है। निसर्ग देव ने इसको दूर करने की कोई औषधि नहीं तैयार की।

जब तुम्हारा धीरज छूटने लगे तो आशा से काम लो और जब तुम्हारी दृढ़ता जवाब देने लगे तो बुद्धि से काम लो।

दुःख भोगना मनुष्य का स्वाभाविक धर्म है। क्या तू चाहता है कि कोई ईश्वरीय शक्ति तुझे आकर बचा ले? अरे भाई तू बड़ा मूर्ख है, जब देखता है कि सभी दुःख भोगते हैं तो तू अपने लिये क्यों घबड़ाता है?

जो दुःख तेरे भाग्य में लिख दिया गया है उससे छूटने का प्रयत्न करना अन्याय है। जो तेरे भाग्य में आजावे उसको चुपके से अङ्गीकार कर ले।

'ऐ ऋतुओं, तुम न बदलो, नहीं तो मेरी आयु कम हो जायगी" ऐसा कहने से क्या वे मान जायँगे? जिसका कोई प्रतिकार नहीं हो सकता उसको सह लेना ही अच्छा है।

चिरकाल तक ठहरने वाला क्लेश तीव्र नहीं होता। इसलिये उसके बारे में शिकायत करते समय तुम्हें लज्जा आनी चाहिये। जो तीव्र है वह अन्तकाल तक ठहरता है, इसलिये उसे अन्त तक सह लेना चाहिये।

शरीर इस कारण बनाया गया था कि वह आत्मा के अधीन रहे। शरीर के सुख के लिये जीवात्मा को दुःख देना जीवात्मा की अपेक्षा शरीर की अधिक कदर करना है।

काँटों से कपड़े फट जाने पर जिस प्रकार बुद्धिमानों को खेद नहीं होता है, उसी प्रकार शरीर को कष्ट होने से धीर पुरुष अपनी आत्मा दुःखी नहीं होने देते।

तीसरा प्रकरण

मृत्यु

जिस प्रकार सोना तैयार करने से कीमियागर की परीक्षा होती है; उसी प्रकार मृत्यु से जीवन और उसके कर्मों की परीक्षा होती है।

यदि जीवन की परीक्षा करनी है तो अन्तिम काल से करो। इसी से तुम्हें मालूम हो जायगा कि तुम्हारा जीवन किस प्रकार का है। जहाँ कपट का व्यवहार नहीं है, वहीं सत्य प्रकाशमान होता है।

जो यह जानता है की मरना किस प्रकार चाहिये, उसने अपने जीवन का अपव्य नहीं किया। उसी प्रकार जो अपना अन्तिमकाल कीर्तिप्रद बना रहा है, उसका जीवन व्यर्थ नहीं बीता।

जिसको जिस प्रकार मरना चाहिये यदि वह उसी प्रकार मरा तो उसका जन्म लेना निरर्थक नहीं हुआ। अथवा जिसने हँसते-हँसते अपने प्राण विसर्जन किये उसका भी जीवन व्यर्थ नहीं गया।

जो जानता है, हम मरेंगे अवश्य उसे सारे जीवन सुख मिलता है, परन्तु जो इससे अनभिज्ञ है उसे सुख नहीं मिलता और यदि कुछ मिलता भी है, तो हीरे की तरह शीघ्र ही खो जाने का भय उसमें लगा रहता है।

क्या तुम्हारी इच्छा मर्दानगी के साथ मरने की है ? यदि है तो पहिले अपने दुर्गुण का गला घोट डालो। सुखी है वह जो मरने के पूर्व अपने जीवन का कार्य समाप्त कर देता है; जो मृत्यु के समय केवल मरना ही अपना कर्तव्य समझता है और जो कहता है, बस, मैं जीवन के सब काम कर चुका, अब मेरी मृत्यु में विलम्ब होने की कोई आवश्यकता नहीं है।

बहादुरी के साथ मृत्यु का सामना करो, उससे मुँह मोड़ना कायरता है। तुम नहीं जानते, वस्तुतः मृत्यु है क्या। तुम तो यही समझते हो कि इससे हमारे दुःखों का अन्त होता है।

दीर्घ जीवन सुखमय नहीं है। सुखमय जीवन है वह जिसका अच्छा उपयोग किया गया हो। जिस मनुष्य ने अपने जीवन का उचित उपयोग किया उसी को प्रतिष्ठा मिलती है और मरने के अनन्तर उसी की आत्मा को सच्ची शांति मिलती है।

ओ३म्   ओ३म्   ओ३म्

॥ समाप्त ॥

सचित्र, मनोरंजक, शिक्षाप्रद, सरल, रोचक, जीवन को ऊँचा उठाने वाली महापुरुषों की जीवनियाँ। मू० ।=)

१—श्रीकृष्ण
२—महात्मा बुद्ध
३—रानाडे
४—अकबर
५—महाराणा प्रताप
६ शिवाजी
७—स्वामी दयानन्द
८—लो० तिलक
९—जे० एन० ताता
१०—विद्यासागर
११—स्वामी विवेकानन्द
१२—गुरु गोविन्दसिंह
१३—वीर दुर्गादास
१४—स्वामी रामतीर्थ
१५—सम्राट अशोक
१६—महाराज पृथ्वीराज
१७—श्रीरामकृष्ण परमहंस
१८—महात्मा टाल्स्टाय
१९—रणजीतसिंह
२०—महात्मा गोखले
२१—स्वामी श्रद्धानन्द
२२—नेपोलियन
२३—बा० राजेन्द्रप्रसाद
२४—सी० आर० दास
२५—गुरु नानक
२६—महाराणा सांगा
२७—पं० मोतीलाल नेहरू
२८—पं० जवाहरलाल नेहरू
२९—श्रीमती कमला नेहरू
३०—मीराबाई
३१—इब्राहीम लिंकन
३२—मुसोलिनी
३३—अहिल्याबाई
३४—हिटलर
३५—सुभाषचन्द्र बोस
३६—राजा राममोहनराय
३७—लाला लाजपत राय
३८ महात्मा गांधी
३९—महामना मालवीय जी
४०—जगदीशचन्द्र बोस
४१—महारानी लक्ष्मीबाई
४२—महात्मा मेजिनी
४३—महात्मा लेनिन
४४—महाराज छत्रसाल
४५—अब्दुल गफ्फार खाँ
४६—मुस्तफा कमालपाशा
४७—अबुलकलाम आजाद
४८—स्टालिन
४९—वीर सावरकर
५०—महात्मा ईसा
५१—वीर केसरी हम्मीरदेव
५२—डी० वेलरा
५३—गैरीबाल्डी
५४—स्वामी शंकराचार्य
५५—सी० एफ० एन्ड्रूज
५६ गणेश शङ्कर विद्यार्थी
५७—डा० सनयात सेन
५८—समर्थ गुरु रामदास
५९—महारानी संयोगिता
६०—दादाभाई नौरोजी
६१—सरोजिनी नायडू
६२—वीर बादल
६३—पट्टाभि सीतारामैया
६४—देवी जोन
६५—प्रिन्स बिस्मार्क
६६—कार्ल मार्क्स